

Ishadarshanam

ईशदर्शनम्

(मननोपनिषत्)

डॉ. बलदेवराजशर्मा

शिवानी-प्रकाशनम्

दिल्ली

स्वार्थ मुक्त सो मुक्त।
मैं मुक्त ईश युक्त।

ईशदर्शनम्

ईशदर्शनम्
(मननोपनिषत्)

डॉ. बलदेवराजशर्मा

शिवानी-प्रकाशनम्
दिल्ली-110085

ईशदर्शनम्

ईशदर्शनम्

(मननोपनिषत्)

सर्वाधिकाराः सुरक्षिताः

प्रथमसंस्करणम् (500 प्रतयः)

दिल्लीतः, ईस्वीयसंवत् 2011

मूल्यम् - धर्मार्थम्

संपर्कसूत्रम्

67, भारत अपार्टमेंट, प्लॉट नं. 20.

सैक्टर-13, रोहिणी, दिल्ली-110085.

फोनः 011-27860055, 09810028128.

लेखकस्य संपर्क सूत्रम् : 09818407840.

मुद्रणम्

डिवाईन प्रिंट-ओ-ग्राफिक्स

फोन : 09899804586

ईशदर्शनम्

ईश-दर्शन
(मनन-उपनिषत्)

डॉ. बलदेव राज शर्मा

शिवानी प्रकाशन
दिल्ली-110085

ईशदर्शनम्

ईश-दर्शन

(मनन उपनिषत्)

सर्व अधिकार सुरक्षित

प्रथमसंस्करण: (500 प्रतियां)

दिल्ली, सन् 2011

मूल्य - धर्मार्थ

संपर्कसूत्र:

67, भारत अपार्टमेंट, प्लॉट नं. 20.

सैक्टर-13, रोहिणी, दिल्ली-110085.

फोन: 011-27860055, 09810028128.

लेखक का सम्पर्क सूत्र: 09818407840

मुद्रण:

डिवाईन प्रिंट-ओ-ग्राफिक्स

फोन : 09899804586

ईशदर्शनम्

PHILOSOPHY OF GOD

(A Session of Meditation)

Dr. Baldev Raj Sharma

Shivani Prakashan

Delhi-110085

PHILOSOPHY OF GOD

(A Session of Meditation)

All Rights Reserved

First Edition: (500 Copies)

Delhi, Year 2011

Price: *Free Distribution*

Contact:

67, Bharat Appartments, Plot No. 20,

Sector-13, Rohini, Delhi-110085.

Ph.: 011-27860055, 09810028128.

Author's Contact : 09818407840

Printing

Divine-Print-O-Graphics, Delhi

Ph.: 09899804586

ईशदर्शनम्

समर्पणम्

ईशदर्शननामकोऽयं ग्रंथः मोतीलाल बनारसी दास इत्याख्य-
प्रकाशनसंस्थायै समर्पितः । अनया संस्थया संस्कृतभाषायाः एवं
भारतीय-संस्कृति-प्रचार-प्रसारहेतोः प्रकाशनैः बहु शंस्यं कार्यं कृतम् ।
अनेन समर्पणेन संस्थायाः कृतज्ञता ज्ञाप्यते ।

ईशदर्शन नामक यह ग्रंथ मोतीलाल बनारसी दास नामक
प्रकाशन संस्था को समर्पित है । इस संस्था ने संस्कृत भाषा एवं भारतीय
संस्कृति की अपने प्रकाशनों द्वारा बहुत सेवा की है । इस संस्था द्वारा
ऐसा कार्य करने की कृतज्ञता के उपलक्ष्य में उन्हें यह ग्रंथ समर्पित
किया जाता है ।

Dedicated

To

M/s. Motilal Bansari Dass

The work entitled-**Ishadarshan** (Philosophy of God)
is dedicated to the M/s. Motilal Bansari Dass. This
Publishing Firm has served the cause of Sanskrit
language and Indian culture through her various
publications. In order to express thankful gratitude to
the firm, this work is being dedicated to her.

प्राक्कथनम्

ईशदर्शनम्- मननोपनिषन्नाम्यस्मिन् पुस्तके यत्किञ्चित्प्रस्तुतं सर्वं तत्पूर्वमेव प्रतिपादितम् । यदि किञ्चिन्नवमिवाभासते तर्हि तदपि पूर्वमेव ऋषिभिः प्रतिपादितम् परमस्माभिरपठितमनवगतं वा ।

ग्रन्थे मया वेदोपनिषद्गीतादीनां मूलपाठा यत्र तत्रोदाहृताः । विचारपरम्पराः प्रस्तूयमाणेन मया स्वनिर्धारितनिष्कर्षपरिपोषणायैवं कृतम् ।

पुस्तकेऽस्मिन् ईशस्वरूपविषये, पूजाविधिविषये, स्वात्मस्वरूपविषये, दैनिकचर्याविषये, जीवने अनुसरणीयविशिष्टदृष्टिकोणविषये, व्यावहारिकजीवनविषये, देवताकारचिन्तनविषये, तेषां स्वरूपविषये च विचारितम् । ईशदर्शनमिदम् । दिव्यचाक्षुषमीशदर्शनम् । शीर्षके 'उपनिषत्' शब्दो परम्परया गूढविचारार्थं मननार्थं सत्रार्थं सूत्रार्थं च प्रयुक्तः । प्रस्तुतं पुरुषार्थलाभाय भवतु एवं कामये ।

समन्वयेन विना संसारे किञ्चिन् न सम्भवति । अस्मिन् कार्येऽपि बहूनां जनानां सहयोगः संप्राप्तः ।

दिल्लीविश्वविद्यालयस्य किरोड़ीमलमहाविद्यालये पूर्व ऐसोसिएट-प्रोफेसर-पदमलंकुर्वाणानां श्री शिवनारायण-शास्त्रिमहोदयानां ग्रंथस्यास्य भाषापरिशोधने श्लाघनीयं योगदानम् । तस्य कृते तेषां धन्यवादाः क्रियन्ते ।

श्री जयकिशनमहोदयानां तथा तेषां जामार्ताङ्गिणां-श्री मनीष शर्ममहोदयानामपि धन्यवादाः क्रियन्ते । श्री कृष्णेन स्वसारथ्येन यद् योगदानमर्जुनाय दत्तमाभ्यामपि तादृशमेव योगदानं कृतम् ।

डॉ. कांशीराममहाभागाः पूर्वम् एसोसिएट प्रोफेसर संस्कृतविभागे दिल्लीस्थे हंसराजमहाविद्यालये; डॉ. रामनाथझामहाभागा असिस्टेन्ट प्रोफेसर विशिष्ट-संस्कृत-अध्ययन-केन्द्रे, नवदिल्लीस्थे जवाहरलाल-नेहरू-विश्वविद्यालये तथा डॉ. प्रवेशकुमारगहलोतमहाभागा असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संस्कृतविभागे, छोटूराम-आर्य-महाविद्यालये, सोनीपतस्थे यथाकालं यथापेक्षं ग्रन्थस्य कार्यसम्पन्ने साहाय्यं कृतवन्तः । तस्य कृते एतेषां त्रयाणां भूरि भूरि धन्यवादाः क्रियन्ते ।

टंकणविषये श्री रियाजसैफ्रीमहोदयेन महती सहायता प्रदत्ता । तस्यापि कृते धन्यवादाः क्रियन्ते ।

सर्वं कृत्वापि यदि ग्रन्थस्य प्रकाशनं न भवेत् तर्हि तस्य उपयोगितापि सीमिता भवेत् । शिवानी-प्रकाशनेन ग्रन्थोऽयं प्रकाशितः । अस्य च ग्रन्थस्य पाठकेभ्य उपलब्धिः कारिता । तस्य कृते प्रकाशनेन सह संबद्धाः श्रीनरेन्द्रकुमारशर्मसदृशाः समाजसेविनः महाभागा धन्यवादाः ।

बलदेवराजशर्मा

प्राक् कथन

ईश दर्शन- (मनन उपनिषत्) नामक इस पुस्तक में जो कुछ भी प्रस्तुत किया गया है वह पहले ही ऋषियों द्वारा प्रतिपादित हो चुका है। यदि कुछ नया लगता भी है तो वह या तो हम पढ़ नहीं पाये या फिर उसे समझ नहीं पाये।

ग्रंथ में, वेद, उपनिषद्, गीता इत्यादि ग्रंथों में से, कई जगह, मूल पाठ, उद्धृत किये गये हैं। विचार परंपरा को प्रस्तुत करते हुए जहां निष्कर्ष ग्रहण किये गये हैं, वहां उन निष्कर्षों को पुष्ट करने के लिए ऐसा किया गया है।

इस पुस्तक में ईश स्वरूप, पूजा विधि, आत्मस्वरूप, दैनिक चर्या, जीवन में अनुसरणीय विशिष्ट दृष्टिकोण, व्यावहारिक जीवन, देवताओं के आकार एवं स्वरूप के विषय में विचार प्रस्तुत हैं। यह ईशदर्शन है। ईशदर्शन ही दिव्यचक्षु है। शीर्षक में उपनिषद् शब्द परम्परा के अनुसार गूढ़ विचार, गूढ़ मनन, सत्र एवं सार के अर्थ में प्रयुक्त है। प्रस्तुत से सभी लाभान्वित हों- ऐसी कामना है।

समन्वय के विना संसार में कुछ भी संभव नहीं। इस कार्य को सम्पन्न करने में बहुत लोगों का योगदान है।

करोड़ीमल कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) के संस्कृत विभाग में पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर के पद पर विराजमान श्री शिव नारायण शास्त्री जी ने इस कार्य के भाषा परिशोधन में बहुत योगदान किया है। मैं उनका मन से आभारात्मक धन्यवाद प्रकट करता हूँ।

श्री जयकिशन कौशिक तथा उनके जामाता श्री मनीष शर्मा के योगदान को भी नहीं भुलाया जा सकता। उन दोनों का इस कार्य में वही योगदान है जो कि अर्जुन को श्री कृष्ण ने अपने सारथ्य से प्रदान किया। मैं, उन दोनों का हृदय से धन्यवाद करता हूँ।

दिल्ली विश्वविद्यालय अंतर्गत हंसराज कॉलेज, संस्कृत विभाग में पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर, डॉ. कांशीराम; जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालयस्थ विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केंद्र में असिस्टेंट प्रोफेसर डॉ. रामनाथ झा तथा छोटूराम आर्य महाविद्यालय के संस्कृत विभाग में असिस्टेंट प्रोफेसर डॉ. प्रवेश कुमार गहलोत ने यथाकाल तथा यथापेक्षा ग्रंथ को संपन्न कराने में अपना विशेष योगदान दिया। इसके लिए मैं इन सभी का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ।

इस कार्य को प्रस्तुत रूप देने में श्री रियाज़ सैफ़ी का बहुत योगदान है। शुद्ध कम्प्यूटर सैटिंग के रूप में प्रस्तुत करके उन्होंने इस कार्य में बहुत योगदान दिया है। उसके लिए वे धन्यवाद के योग्य हैं।

सब कुछ करने के पश्चात् भी यदि ग्रंथ प्रकाशित नहीं होता तो उसकी उपयोगिता सीमित होती है। शिवानी प्रकाशन ने इस ग्रंथ को प्रकाशित करके इसे पाठकों को समर्पित किया है। इस हेतु प्रकाशन से संबद्ध श्री नरेन्द्र कुमार शर्मा जैसे समाजसेवी धन्यवाद के पात्र हैं।

बलदेव राज शर्मा

Fore Word

Whatever is presented in the book entitled as PHILOSOPHY OF GOD (A Session of Meditation) is, in fact, already professed by seers and if some thing appears new that is because of either we could not get at it or interpret it.

The original mantras or verses have been quoted from the Vedas, the Upanishads and the Bhagawadgita etc. in the book. This has been done in order to support the author's conclusion of the traditional thought.

The matter related to the nature of God, the way of worshiping, the nature of self, daily routine to be adhered to, attitude to be had in life, myth and nature of God and gods, are discussed in this book. This book is the Scripture on God. Scriptural revelation of God, is the Divine Eye.

The term "Upanishad" in the title, stands for deeper meaning, deeper reflection, a session and condensed meaning. The presentation be of avail to everyone, I wish so.

There is nothing possible without the co-operation and co-ordination of many, in the world.

Shri Shiv Naryana Shastri, former, Associate Professor, Department of Sanskrit, Kirorimal College, Delhi University, Delhi, has a great role in the correction of the language of the work from grammatical point of view. I thank him from the core of heart.

Shri Jai Kishan Kaushik and his son-in-law Shri Manish Sharma also deserve my thanks as they played the same role as Lord Krishna had in the life of Arjuna.

Dr. Kanshi Ram, Former Associate Professor, Department of Sanskrit, Hansraj College, Delhi University; Dr. Ram Nath Jha, Assistant Professor, Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi and Dr. Pravesh Kumar Gahlot, Assistant Professor, Chotu Ram Arya College, Sonapat contributed to the completion of the work according to time and need. For this, they deserve special thanks.

The present form of the book is because of the efforts of Mr. Riyaz Saifi. His praiseworthy help in computerised setting of the book, deserves appreciations and thanks.

After doing all, if the work is not published, its utility remains confined. 'Shivani Prakashan', published it and brought it before the readers. For that the society-well-wisher like Sh. Narendra Kumar Sharma deserves thankful gratitude. May God bless him for this noble work.

Baldev Raj Sharma,

ईशदर्शनम्

विषय-सूची

(ग्रन्थ का पूर्व भाग)

● ग्रन्थ शीर्षक एवं प्रकाशन संबंधी सूचनाएं (संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी)	i-vi
● समर्पणम् (संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी)	vii
● प्राकथनम् (संस्कृते)	viii-ix
● प्राकथन (हिन्दी)	x-xi
● प्राकथन (अंग्रेजी)	xii-xiii
● विषय-सूची	xiv-xvii
● भक्त-भगवत्-संवाद	xviii
● देह बुद्धि से दास हूँ (हनुमान जी का चित्र)	xix
● वन्दना	xx

(ग्रन्थ का मूल भाग)

● ईशदर्शनम्	1-230
● विषय प्रवेश	1-5
● परम तत्त्व का गुरु, ईश (राम), गणेश, शिव, भगवती, दिङ्नाग, ग्रह, नक्षत्र रूप में स्तुति	6-15
● देव मानव और असुरों में भेद	16
● देव भावन (ईश-भावन)	17-18
● सर्वत्रेश भाव	19
● अहंभाव-दुख-बन्धन	20-22
● ईश जिज्ञासा का हेतु	23
● ज्ञान प्रवर्तक ऋषियों का उद्घाटन, ईशार्चा, अहंकारदोष, श्रद्धा, आस्तिकता, ईशकृपा से पूजा आस्था और पूजा का विशेष फल एवं पूजा का स्वरूप	24-40

ईशदर्शनम्

- परम तत्त्व का स्वरूप 41-42
- ध्येय अनुरूप ध्यान का फल 43-50
- भेद दुःख का मूल कारण-अहंभाव
और अभेद ज्ञान की प्रेरणा 51-54
- परम तत्त्व-ब्रह्म, शिव तथा उसकी त्रिगुणात्मक शक्ति 55-62
- शिव शक्ति की अभिन्नता, शक्ति की अपरिहार्यता, तथा
शक्ति के विविध रूप एवं प्रसार 66-68
- देवताओं का वास्तविक एवं काल्पनिक रूप श्रद्धानुरूप 69-77
- ईश के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों रूप 78
- परमतत्त्व वस्तुतः अनिर्वचनीय केवल अनुभव ग्राह्य 79-81
- संसार अदृष्ट देव (ईश) का काव्य 72
- देव (ईश) ही स्वयं, स्वयं को देखता है 83
- संसार परमार्थ दोनों ही देव के रूप 84
- ध्यान की अवस्थाएं और चरमसीमा 85-87
- शून्य समाधि की उपयोगिता और शून्य
समाधि में पड़े रहना उपनिषदों को अनभिप्रेत 88-89
- परमतत्त्व ब्रह्म के स्वरूप के सम्बन्ध में वेदों
के विचार और उसमें आस्था रखने की प्रेरणा 90-93
- ज्ञान और कर्मशक्ति का मूलाधार ब्रह्म 94-96
- जीवनोपयोगी अनुपालनीय कर्तव्य, कार्याकार्य,
भोज्य-अभोज्य, अति-अनति, सेव्य-असेव्य,
कारण कार्य भाव और उनका जीवन में उपयोग,
भगवद् भक्ति के लाभ, अहंभाव से हानि, संसार
परमार्थ में संतुलन, सर्वत्रेशभाव ग्राह्य, भेदभाव हेय 97-122

ईशदर्शनम्

- ईशभक्ति और कर्तव्यपरायणता सम्बन्धी
ईशोपनिषद् का उपदेश 123
- नित्य जाप स्तुति हेतु गायत्री इत्यादि
एवं अन्य कई मन्त्र और श्लोक 124-134
- ईश शरण एवं भजन की अपरिहार्यात्मकता हेतु
गीता के श्लोक 135-140
- रागभाव का भक्ति के रूप में प्रयोग लाभ 141-142
- अहंभाव जीव का बन्धन ईशभाव से उसकी मुक्ति 143-145
- जीव द्वारा आन्तरिक प्रवृत्ति अनुरूप चलना-
देव निर्दिष्ट मार्ग कहलाता है और उसकी
ग्रंथियों को खोल कर मोक्ष परक बनाता है 146-163
- मोक्ष अथवा मुक्त का स्वरूप, समभाव,
निमित्तभाव अथवा ईश हेतु कर्म 164-167
- परमार्थ में श्रद्धा एवं गुरु भक्ति सर्वोपरि 168-169
- सर्वत्रेशभाव, समभाव को प्राणों की भांति
सहज बनाना जीवन में चमत्कारक 170-172
- सभी उपायों से बढ़कर सर्वत्र ईश देखना
और सब से सौहार्द स्थापित करना सर्वोपरि
द्वंद्व क्लेश हारक एवं सुखदायक 173-179
- सत् चित् अनन्त स्वरूप ईश को अपने में विराजमान
जानना और अहंकार को उसके यथोचित स्थान
पर ले जाना, सबमें परमेश्वर देखना और रागद्वेष
का त्याग करना-परम लक्ष्य 180-191
- सर्वत्रेश भाव का आचरण युगों-युगों के उपदेश के
बावजूद भी उपेक्षित 192

ईशदर्शनम्

- अभय आनन्द प्राप्ति हेतु सच्चिदानन्द स्वरूप ईश का अपने अन्तःकरण में ध्यान करना आवश्यक 193-200
- “ईशदर्शनम्” का सार (संस्कृत में) 201-226
- सब लोकों परलोकों का धाता, साधक के अन्दर 201
- प्रेम से डंसे प्रेमी की तड़प के समान ध्यान साधना रूप अग्नि से अहंकार गलता है और परमेश्वर के दर्शन होते हैं 202-208
- असली श्रद्धा और पूजा का स्वरूप और उनका योगदान 209-211
- ज्ञान और अनुभव में भेद 212-213
- नाम जाप और और मनन पूर्वक शास्त्र सेवन लोकतृषा हारक एवं ज्ञान कारक 214
- चित्त संधान के विविध ध्येय एवं उनके विशेष फल 215
- जीवन में परमोपयोगी ज्ञानानुभवस्थिति- संसार परमार्थ की संधि (सर्वत्रेशभाव)- सतत भक्ति द्वारा प्रभु कृपा से ही प्राप्त- 216-224
- सर्वत्रेश भाव चरितार्थ होने से पूर्व लौकिक कार्यों में तर्क एवं युक्ति का प्रयोग -सर्वत्रेश भाव के पश्चात् लोक परलोक दोनों में समान गति 225-226
- ‘ईशदर्शनम्’ का सरल सार- (हिन्दी में) : ईश अजस्र सृष्टि का खेल खेल रहा है 227-229
मैं मेरी का अपने में मेल करो 229
- मैं मुक्त, ईश युक्त 230
- लेखक का परिचय कवर के पिछले भाग पर

xvii

भक्तभगवत्संवादः

भक्त उवाच :

रूपं रूपविवर्जितस्य भवतो ध्यानेन यत्कल्पितम्,
स्तुत्यानिर्वचनीयताखिलगुरोर्दूरीकृता यन्मया ।
व्यापित्वं च निराकृतं भगवतो यत्तीर्थयात्रादिभिः;
क्षन्तव्या जगदीश! मे विकलता दोषत्रयाद् या कृता ॥

भगवान् उवाच :

अरूपोऽपि जगद्रूपः, अनिर्वाच्यो विश्ववन्द्यः।
सर्वगोऽपि लोकोऽलोकः, इदमदोमयोऽप्यन्यः॥

भक्त बोला- हे प्रभो! रूप से रहित आपका, जो ध्यान करते हुए, मैंने रूप कल्पित कर दिया; हे सबके गुरु! आपकी अनिर्वचनीयता का, जो मैंने स्तुतियों द्वारा उल्लंघन कर दिया; आपके सर्वव्यापक भाव का, मैंने तीर्थ यात्राओं इत्यादि द्वारा जो निराकरण कर दिया, हे जगदीश! इन तीन दोषों को करने के कारण जो अपराध मुझसे हुआ है, उसे क्षमा कर दीजिए।

भगवान् बोले- अरूप होते हुये भी मैं जगद्रूप हूँ। अनिर्वचनीय होने के बावजूद, मैं सब के द्वारा वन्दनीय हूँ, सब वस्तुओं के द्वारा वर्णनीय हूँ। सर्वव्यापक होते हुये भी कहीं ग्रह, नक्षत्र, तारा लोकों के रूप में, और कहीं शून्य सदृश अन्तरालीय अलोक रूप, सुनसान रूप हूँ। मैं ऐसे रूपों जैसा, वैसे रूपों जैसा, और रूप-अरूप दोनों से भी अन्य हूँ।

Oh Lord! forgive me for my fault of committing three blunders; firstly, of assuming form for thee, who, in fact, is formless during my meditation; secondly, of transgressing your indescribability through my eulogies of the preceptor of the world and thirdly, of ignoring your pervasiveness through my journeys of holy-places, Says devotee.

God replies - In spite of being formless, I assume multiple forms of various worlds. I am indescribable still being extolled by all, expressed by all things. I am All Pervasive, even then, I am manifest as planets, constellations and stars and still unmanifest as widely spread void-like zones, in between. I am like this, like that, and still different from both.

मेरे परम गुरु हनुमान जी



देहदृष्टि से तेरा दास हूँ, जीवदृष्टि से तेरा अंश ।
आत्मदृष्टि से आप ही हूँ, प्रभु ! ऐसा मेरा विश्वास ॥

॥ वन्दना ॥

हरति गुरुरज्ञानं गुरुर्ज्ञानं प्रयच्छति,
संशयानपहायाथ श्रद्धायां निदधाति च।
ऋषिपरम्परां वन्दे पितृगुरुगणं तथा,
गोपालं रसिकं वन्दे गुरुं रामविहारिणम् ॥ 1 ॥

दोलायमानः ठाकुरः तुष्यतीह निश्चयेन,
सुगन्धिं सेवमानायाथ पुष्टिं च प्रयच्छति।
भक्तोऽपि च भगवत्या ननु प्राप्नोति सर्वस्वम्,
शिवस्तस्य शम्भूरथ मयस्करोऽर्द्धनारीशः ॥ 2 ॥

दिनेशमुद् दिव्यांशो हि,
रामगीत्या राजते सः।
आदर्शमहिमा सौम्यः,
आञ्जनेयो देवदेवः ॥ 3 ॥

शिवस्वरूपो गुरुर्मे,
मरुत्कुलभूषणः सः।
प्राणा विचाराः सर्वेषाम्,
आञ्जनेयो महादेवः ॥ 4 ॥

॥ अथ ॥
॥ ईशदर्शनम् ॥

(1)

अथेहाथामुत्राथ चैव हे मननशील! एवं सर्वत्र ।
व्यवस्थैषा संकेतयत्यन्तरीशं सच्चिदनन्तस्वरूपम् ॥

सांसारिक वस्तुओं का आरम्भ और अंत हम देखते हैं, जैसे यह आरंभ और अंत यहां है वैसे ही अन्यत्र भी है और सर्वत्र ही है (सभी लोको में है) । इस आरंभ और अंत धर्मी परिवर्तन व्यवस्था को देखने पर किसी अन्तःस्थित चेतन, नियामक और नित्य सत्ता की ओर संकेत प्राप्त होता है जो सभी प्रकार की वैचारिक पकड़ और प्रभावों से परे है ।

Beginning of things and their end is here, it is there, (in other worlds), it is everywhere. The orderliness in this scheme of worldly change, points to some underlying controlling conscious principle which is beyond all comprehensions and worldly limitations.

(2)

अथ जायते बालायते युवायते व्यवहरते वृद्धायते ।
सुखायते दुःखायते जिज्ञासते किमिदं मननपरो* यदा ॥

इस संसार में इन्सान पैदा होता है, बालक तथा युवा होता है । संसार में विचरण और व्यवहार करते करते वृद्ध हो जाता है । यहां संसार में कभी सुखी कभी दुःखी होता है । और अगर कभी सोच शुरु हो जाये तो जानना चाहता है- सब क्या है ?

After being born in the world, one grows as a child and as a young man. Thus dealing in the world, he grows old. He is some time happy and some time unhappy. And if he happens to ponder over, he wants to know what this all is.

*गमनपरो यदा

(3)

जिज्ञासमानैः पूर्वजैः घोरैः तपोभिर्यथा कथं तत्त्वं विज्ञातम् ।
उद्भावयति पालयति तारयति यः स वै सर्वपूज्यः ईशः ॥

इस विषय में जिज्ञासा करते हुये, हमारे पूर्वजों ने घोर तप के द्वारा जैसे-कैसे असलियत को जाना और बताया कि जो हमें और हमारे संसार को पैदा करता है, पालता और पोषण करता है, वह सर्व पूज्य ईश कहलाता है ।

Enquiring about this matter, our predecessors, somehow, through austere process, got at the Truth. And told that the one who produces, sustains and promotes the world and us, is known as all regardful God.

(4)

ईशो मयीशश्च त्वयीशः सर्वत्र सर्वस्मिन् जगति ।
संकल्प्य सर्वान् सर्वान्तर्यामी तस्मादीश इत्युच्यते ॥

ईश मुझ में है, ईश तुझ में भी है, ईश सर्वत्र और सब जग में है। वह सब को अपने संकल्प द्वारा रच कर सब में अन्तः स्थित होकर, सबको सञ्चालित करता है, इसलिये वह ईश कहलाता है।

God is in me, God is in thee, God is everywhere in the whole world. He projects one and all through his imagination and controls them all from within and hence is known as God.

(5)

यथा प्राप्तमीशमतं यथा बुद्ध्यावगतञ्च ।
मननाय प्रस्तुतमत्राभ्यासायानन्दाय च ॥

जैसा ईशमत हमें प्राप्त हुआ है और जैसे हमारी बुद्धि उसे समझ पाई है, मनन चिन्तन हेतु उसे यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ताकि अभ्यास (पाठ) करते-करते उसका आनन्द लिया जा सके ।

As we receive the tradition related to the thought of God and as we could understand it, we have presented that over here for the sake of meditation, reflection and practice, in order to get happiness.

(6)

***वेदैः शास्त्रैर्भूतकदम्बैः प्रतिपाद्यम्,
विश्वाभासं निर्विषयज्ञानमनादिम् ।
सर्वप्राणार्थं मारुतिभावं सम्पन्नम्;
वन्दे सद्गुरुं सदा श्रीरामोपासकम् ॥**

वेद, शास्त्र और सांसारिक वस्तुएं निरन्तर बता रही हैं कि उनका रचने वाला कोई तत्त्व अवश्य है। वेद उसे इन्द्रियों और मन की पकड़ से परे ज्ञान तत्त्व मानते हैं। वही चित् (ज्ञान) सब में जीवन अथवा प्राण हेतु मारुति रूप से प्रकट है। वही हमारे सद्गुरु हैं, वे नित्य श्री राम के ध्यान में लीन रहते हैं।

The Vedas, the scriptures, and the manifestations of the world do foretell that there is their creator. The Vedas tell that the creator is substantive knowledge (Intelligence) beyond the scope of senses and mind. That principle has assumed the form of god-Maruti for the sake of the life and breath of all beings. He is our Preceptor (Guru). He is always engrossed in the meditation of Lord-Shri Ram.

* वेद परम शास्त्र हैं, अन्य शास्त्र उस पर आश्रित हैं। अनुभव और तर्क द्वारा प्रतिपादित ज्ञान, शास्त्र है।

(7)

श्रीरामः स्वरूपं सर्वस्य,
दैवतस्याथादैवतस्य ।
आभासात्मकं देवशास्त्रम्;
सच्चिदानन्दो गुरुर्ब्रह्म ॥

श्री राम, देव रूप संसार के और देवताओं के अतिरिक्त संसार के, मूल स्वरूप (अन्तिम कारण) है, मूल तत्त्व हैं। जितना भी दिखाई देने वाला परिवर्तनशील संसार है-वह देव शास्त्र है। (इसमें रह कर हम बहुत कुछ सीखते हैं) गुरु अथवा परमेश्वर सत् चित् आनन्द स्वरूप हैं।

Shri Ram (One of the names of God) is the ultimate cause of divine and ordinary creation. The visible world is the divine scripture (as we living here learn a lot). Our preceptor Hanumanji and Lord Shri Ram are of the nature of Supreme Existence-Intelligence -Bliss.

(8)

गजाननीभूय गुरुर्ब्रह्म
एकोऽहं भावेन बहुभूतः ।
सत्त्वरजस्तमोभिर्विश्वेशः ;
स्मृतः कर्माग्रे ऋद्धिसिद्धिदः ॥

गज मुख धारण कर अर्थात् अहंकार को आरोपित कर ब्रह्म रूप गुरु ही एक होते हुये भी अनेक हो गये हैं । सत्त्व, रजस् और तमस् के द्वारा वे विश्वेश बन जाते हैं । कार्य के आरंभ में स्मरण करने पर ऋद्धि और सिद्धि देते हैं ।

The Supreme Cause who is also the preceptor and final cause having become elephant faced, Ganesh viz., applying ego, became world of multiple forms. He through sattva, rajasa, and tamasa becomes controller of everything. He, on being prayed in the beginning of any work, gives success and accomplishment.

(9)

श्रीगणेशरूपेण परब्रह्म,
अन्यद् युष्माकमन्तरं बभूव ।
विश्वं विरच्य सर्वकर्माध्यक्षः ;
स्मृतः कर्माग्रे विघ्नहा सिद्धिदः ॥

परब्रह्म ही गणेश रूप से आपके मध्य अन्य रूप वाले बने हुए हैं । सारे संसार को रचने के कारण वे ही सारे कर्मों के अध्यक्ष भी हैं । कार्य के आरम्भ में स्मरण किये जाने पर वे महान् गणेशजी सब विघ्नों को हर लेते हैं और सिद्धि देते हैं ।

Supreme Lord Himself assuming the form of Ganesh viz., applying ego on him, has become otherwise, i.e., many amongst you. On account of producing all, he is the supreme authority of all actions. On being remembered in the beginning of work, he, the supreme, wards off all obstacles and gives accomplishment.

(10)

गणेशं कामाख्यां देवीं गुरुं हनुमद्देवञ्च,
ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् त्रिगुणाख्याञ्च प्रणम्य ।
चेतनाचेतनमयमनन्तरूपं ब्रह्माण्डम् ;
स्तौमि विश्वरूपमीशं सच्चिदानन्दस्वरूपम् ॥

गणेश जी, कामाख्यादेवी, गुरु हनुमान जी, त्रिगुणात्मक ब्रह्मा, विष्णु, महेश को प्रणाम करके तथा चेतन-अचेतन रूप अनन्त ब्रह्माण्ड को भी प्रणाम करने के अनन्तर हम सच्चिदानन्द स्वरूप विश्वरूप ईश्वर का स्तवन करते हैं ।

After having paid our homage to Lord Ganesh, Kamakhya Devi, Hanumanji, the preceptor; Brahma, Vishnu, Mahesha, the trinity as the abiding deities of Sattva, Rajas and Tamas Gunas, the basic fabrics of creation; to the animate and inanimate boundless cosmos, we propitiate the supreme Lord of multiple creations Who is essentially, Existence-Consciousness-Bliss.

(11)

शिवो निर्विषयज्ञानं शिवान्याथ सगुणः सः,
गणेशेनाहंभावेन स भवति सर्वेश्वरः ।
षडिन्द्रियैः षडाननः प्राणैश्च स पञ्चाननः ;
नामरूपगणैः सह विश्वनाथो भवेच्छिवः ॥

शिव, निर्विषय ज्ञान तत्त्व है, शिवानी के द्वारा (सृष्टि करने की इच्छा द्वारा) वह सगुण रूप हो जाते हैं। अहंभाव रूप, गणेश के द्वारा वे सबके स्वामी बन जाते हैं, षड् इन्द्रियों के द्वारा षडानन (कार्तिकेय) और पंच प्राणों के द्वारा पंचमुखी हनुमान बन जाते हैं। नाम रूप गणों के सहित, ऐसे शिव हमारे लिए मंगलमय हों।

Lord Shiva is the Ultimate Cause beyond the scope of senses and mind. By Shivani, viz., the creative impulse, He assumes multiple forms of the world. By ego, viz., Ganesh, He becomes Lord of every things. By five senses and sixth mind, He becomes Lord Karttikeya; by five fold vital breaths, He becomes five faced Hanumanji. Let Lord Shiva with the multitude of names and forms protect and be auspicious to us.

(12)

संनमन्त्यन्तर्यामिनमीशम्,
भगवतीरूपेणापि भक्ताः ।
श्रदनन्तमथ श्रद्धानन्ता;
महिमानन्तः स्तुतयश्चानन्ताः ॥

अन्तर्यामी ईश की भगवती के रूप में भी भक्त स्तुति नमन करते हैं। सत्य अनन्त है, उसको ग्रहण करने वाली श्रद्धा भी अनन्त है। इसलिये सत्य की महिमा और स्तुतियाँ भी अनन्त हैं। (सत्य की स्तुति किसी भी लिङ्ग, आकार और शब्द के द्वारा की जा सकती है)।

God, the inner controller, is propitiated even in the form of Mother-Goddess. The Truth is dimesionless as well as the faculty of faith which can grasp it, is also limitless. The magnificence of Truth is also limitless as well as its eulogies are also limitless.

(13)

प्राच्यामिन्द्ररूपामाग्नेयकोणे अग्निरूपाम्;
अवाच्यां तां यमरूपां नैऋत्ये राक्षसरूपाम् ।
प्रतीच्यां वरुणरूपां वायव्ये च वायुरूपाम्;
उदीच्यां कुबेररूपामीशाने महेशरूपाम् ॥

माँ भगवती, पूर्व में इन्द्ररूप से; आग्नेयकोण में अग्निरूप से; दक्षिण में यमरूप से; नैऋत्य कोण में राक्षस रूप से; पश्चिम में वरुण रूप से; वायव्यकोण में वायुरूप से; उत्तर में कुबेर रूप से; ईशानकोण में महेश रूप से विराजमान है ।

Mother-Goddess is manifest as Indra in the east; as fire in the south-east; as Yama, the Death in the south; as Rakshasa, the demon in the south-west; as Varuna in the west; as Air in the north-west; as Kuber in the north, and as Mahesh (Shiva) in the north-east.

(14)

आदित्यग्रहनक्षत्राणि दिवि सर्वधारिणीं धरामधः,
रूपं रूपं प्रतिरूपां च तां भूतेषु भूतेषु तथा भूताम् ।
अन्तःस्थां जीवात्मरूपां देवीं बाह्यतश्च विविधरूपिणीम्,
कालाकाशदिग्गूपामथाम्बां मे वन्देऽनन्तां चित्स्वरूपिणीम् ॥

भगतवती माँ द्युलोक में आदित्य ग्रह नक्षत्र रूप में विराजमान हैं; सबको धारण करने वाली, नीचे, धरा के रूप में; रूप-रूप के अनुरूप रूपवती, भूत-भूत के प्रति भूतरूप धारण किये हुये हैं। अन्तः जीवात्मा रूप से तथा बाह्यतः विविध रूप धारण किये हुये हैं। काल, आकाश एवं दिग् रूप तथा चित् स्वरूप अनन्त माँ को मैं प्रणाम करता हूँ ॥

(Again) Mother-Goddess is manifest as Adityas (signs), planets and constellations in the heaven; as earth, below, the support of all. She has become all forms as are apparent before us. Further, She has assumed the form of all creatures as they appear. She is the vital force of life inside all beings and externally, She is manifest as multiple forms. I pay my homage to Mother-Godess as time, space and directions and again in her true nature as all-embracing pervasive consciousness.

(15)

ब्रह्मा मुरारिश्च त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिर्मंगलो बुधश्च ।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः सर्वेशरूपाणि च शिवानि सन्तु ॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश, भानु, शशी, भूमि, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु इत्यादि और अन्य सारे ईश्वर के रूप हमारे लिए मंगलमय हों ।

Brahma, Vishnu and Shiva, Sun, Moon, Earth, Mars, Mercury, Jupiter, Venus, Saturn, Rahu, Ketu and all other forms of God-- let them be auspicious to us.

(16)

प्ररोक्षप्रिया हि देवा अहंप्रिया असुरा मानवाश्च ।
देवो भूत्वा यजेद् देवं नोचेद् ध्यानमर्चनं वा व्यर्थकम् ॥

देवता परोक्ष प्रिय (अहंकार रहित) तथा असुर एवं मानव अहंप्रिय होते हैं। देवभाव अपना कर अर्थात् अहंकार भाव से रहित होकर भजन करना चाहिये अन्यथा पूजा, ध्यान, अर्चन, व्यर्थ हो जाते हैं।

The gods do not want to expose themselves (they are egoless), the men and demons are fond of ego. Becoming god, viz., free of ego, one should worship God, otherwise, meditation and prayer are, of no avail.

(17)

ईशो मयि ह्यात्मरूप ईशो तात! मयि च प्राणरूपः ।
ईशो मयि मनोऽहंशरीररूप इति देवभावनम् ॥

ईश्वर, मुझ में आत्मा रूप से, तथा ईश, हे तात! मुझ में प्राणरूप से विराजमान है। ईश ही मुझ में मन, अहंकार तथा शरीर रूप है—ऐसी भावना ही देवभावन है।

Lord (Isha) is as soul and vital breath in me; Lord is, as well, mind, ego and body in me. This attitude is known as Deva-bhavana.

(18)

अस्मिन् भावारूढे कृता पूजा,
निश्चयेन कल्याणकारिणी ।
हृदये आनन्दमातनोति;
सर्वत्रैवमीश्वरभावनम् ॥

देवभाव में आरूढ होकर की गई पूजा निश्चय से ही कल्याणकारी होती है। ऐसे हृदय में आनन्द आप्लावित होने लगता है और सर्वत्र ईश्वर की वर्तमानता प्रतीत होने लगती है।

The prayer done with the attitude of deva-bhava viz., all is God, certainly, leads to well-being. This causes thrill in the heart and leads to the experience of God pervading everywhere.

(19)

सर्वरूपाणीशरूपाणीति एवं जपेन मननेन च ।
निश्चयेनार्जुनदृष्टमिव प्रत्यक्षं विश्वरूपदर्शनम् ॥

सारे रूप ईश्वर के ही रूप हैं-ऐसा जप और मनन करने से, निश्चित रूप से अर्जुन द्वारा देखे गये विश्व रूप के दर्शन होने लगते हैं ।

All forms are, in fact, the forms of God. Exercising this meditation, certainly, one happens to have the vision of Vishva-rupa as Arjun had.

(20)

शक्त्या भद्र! क्रियते कृत्यं सर्वम्
अहमित्यविद्यायामारोपितम् ।
इदमेव जीवबन्धनमुक्तम्;
शक्तिपूजया तदपवार्यते ॥

भला चाहने वाले! ध्यान से सुन-माँ शक्ति के द्वारा सब कुछ किया जा रहा है। परन्तु अहंकार रूप अविद्या में, हम उसे आरोपित कर रहे हैं। यही जीव का बन्धन है। निरन्तर शक्ति (भगवती) का जाप करने से, यह भ्रम/अज्ञान मिटता है।

O, desirer of well being! Mother Goddess is operating all functions but out of ignorance, we impose that on our ego, viz., think that our ego or we are doing this. This is ignorance. It can be done away with, by the prayer of Mother-Goddess.

(21)

अहं यावद् द्वैतं तावत्, क्लेशो रागद्वेषौ यावद् ।
विश्वेशेन समन्वये अहंतैवमनन्तता ॥

जब तक अहंकार है तब तक द्वैतभाव (मैं तू भाव) है, क्लेश, राग द्वेष है। जब अहंकार, संसार और ईश्वर से- एकीभाव कर लेता है तब अहंकार अनन्तता को प्राप्त हो जाता है।

Till there is ego, there is duality, there is attachment, animosity and disturbance. As soon as there is rapport with the world and its Lord, the ego is transformed to oneness with all, and hereafter, one knows no limits.

(22)

जन्मजन्मान्तरे अहंकारवशाद् विद्याभाववशाच्च ।
अहंकर्ताहं भोक्तेति नैसर्गिकं जीवनं याप्यते ॥

जन्म जन्मान्तरों से चले आ रहे अहंकार के कारण और विद्या के अभाव के कारण- मैं कर्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ, ऐसे, नैसर्गिक जीवन यापन होता रहा है, चलता रहता है ।

Because of the historicity of ego from many births and because of the lack of knowledge, one recognises oneself as doer and enjoyer and hence goes on leading rudimentary style of life as he gets from nature

(23)

संसारे वारं वारं बहुशः प्रपीडितः किमिदं किमहम् ।
जिज्ञासेति जायते एवं रुचिर्जायते समाधाने तत्र ॥

संसार में बार-बार बहुत प्रकार से पीड़ित होने पर जिज्ञासा होती है कि यह सब क्या है और मैं क्या हूँ। और फिर इसके समाधान की इच्छा होती है।

On being tortured time and again in manifold ways, in the world, one is curious to know what he and his world are. Hereafter, one wants to find out the solution thereof.

(24)

उर्ध्वरेतस ऋषयः प्रकृत्या प्रेरिता उद्घाटितवन्तः ।
प्रकृत्या क्रियते सर्वमिदमहं तत्र तु निमित्तमात्रम् ॥

अग्र तप तेज वाले ऋषियों ने प्रकृति से प्रेरित होकर उद्घाटित किया कि प्रकृति द्वारा ही यहां सब कुछ किया जा रहा है, अहं तो निमित्त मात्र है ।

The seers of foremost excellence, on being inspired by nature, unfolded that, in fact, nature does everything here and ego is just an instrument thereof.

(25)

ईशार्चया शास्त्राभ्यासेन संस्कारपरिमार्जनेन तथा ।
विश्वरूपेण सामञ्जस्यमेति परमानन्दोऽतस्तत्र ॥

ईश अर्चा, शास्त्र अभ्यास तथा संस्कार परिमार्जन द्वारा विश्वरूप के साथ सामाञ्जस्य हो जाता है और इससे आनन्द प्राप्त होता है ।

By prayer of Lord, study of scriptures and purification of thought, one establishes rapport with multiformity and is thus, established in bliss.

(26)

अहंकारो यदाधिकः शान्तिस्तदा हि न्यूना ॥
श्रद्धा यदा बलवती शान्तेस्तथा समृद्धिः ॥

अहंकार जब अधिक होता है तो शान्ति कम होती है। श्रद्धा जब बलवती होती है तो शान्ति की तब समृद्धि होती है।

When there is more ego, there is less peace, when there is strong faith there in the prosperity of peace.

(27)

अस्ति नियामकं तत्त्वमस्ति नियामिका शक्तिः ।
एषा मान्यता श्रद्धास्ति अतोऽन्या च नास्तिकता ॥

संसार को चलाने वाला नियामक तत्त्व है, नियामिका शक्ति है-
ऐसी मान्यता श्रद्धा है और इसके अतिरिक्त, अन्य नास्तिकता है ।

There is the controlling principle of the world and
also there is the controlling power of the world. This
conviction is faith and contrary to this is non-faith.

(28)

आस्तिकता जीवने अनिवार्या नास्तिकता जीवने निवार्या ।
आस्तिकता जीवने प्रभासो नास्तिकता जीवने अन्धकारः ॥

आस्तिकता जीवन में अनिवार्य है, नास्तिकता जीवन में निवारण योग्य है। आस्तिकता जीवन में प्रकाश है, नास्तिकता जीवन में अंधकार है।

Faith is essential in life, non-faith must be done away with. Faith is light in the life, non-faith is darkness in the life.

(29)

आस्तिकता जीवने आशाविश्वासकारिणी ।
नास्तिकता जीवने निराशासंशयवर्द्धिनी ॥

आस्तिकता जीवन में आशा विश्वास जगाती है, नास्तिकता जीवन में निराशा और संशय को बढ़ाती है ।

Faith causes optimism and trust in life, non-faith is responsible for frustration and doubtful disposition.

(30)

आस्तिको जीवने सफलप्रयासस्सम्पन्नः ।
नास्तिको जीवने विफलप्रयासो विपन्नः ॥

आस्तिक जीवन में अपने प्रयासों में सफल होता है और समृद्ध होता है । नास्तिक जीवन में अपने प्रयासों में असफल रहता है और फलस्वरूप निर्धन होता जाता है ।

Man of faith is successful in his efforts and is therefore prosperous in life. Man who does not believe, fails in his efforts and hence, is poor.

(31)

आस्तिको जीवने पूजयार्चया ओजस्वी ।
नास्तिको जीवने अहंवृद्ध्या च नष्टधीः ॥

अस्तिक जीवन में पूजा अर्चा द्वारा ओजस्वी होता जाता है, नास्तिक जीवन में अहंकार की वृद्धि के कारण नष्ट बुद्धि वाला हो जाता है ।

Man of faith has a special lustre because of prayer and worship but man with no faith has more ego and hence, has the retarded discretion.

(32)

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम् ॥

—श्री रामचरित मानस बा.का. 2.

श्रद्धा और विश्वास के रूप-भवानी और शङ्कर को प्रणाम हो ।
इन दोनों की कृपा के बिना सिद्ध लोग अपने अन्तः स्थित ईश्वर को
नहीं देख सकते ।

I pay my respectful homage to Bhawani and Shiva
as the symbols of conviction and faith. Without their
grace, none of the accomplisher, can perceive God
though enshrined in the heart.

(33)

संसारे सामान्येन ननु जड़ता,
ईशकृपयोदेति प्रत्यक्षबुद्धिः ।
तदनन्तरं जायते तर्कबुद्धिः
अति भाग्येनाथोदेति श्रद्धाबुद्धिः ॥

संसार में सामान्य रूप से जड़ता (अचेतनता) दिखाई देती है। ईश कृपा से प्रत्यक्ष दृष्टि की शक्ति मिलती है। इसके अनन्तर तर्क बुद्धि प्राप्त होती है और बड़े भाग्य से अन्ततः श्रद्धा बुद्धि (सूक्ष्मतत्त्वों को जानने की ज्ञान शक्ति, निश्चयात्मिक शक्ति) प्राप्त होती है।

Generally, there is non-intelligence all around. It is the great blessing of lord that one gets the power of faculty of direct perception. After that one is to get the chance of faculty of inference- power or gift of logic. Thereafter through great luck and grace of God, one is blessed and bestowed on with the faculty of Shraddha, the faith, a special faculty of mind by which, one can perceive and conceive subtle objects of truth.

(34)

जन्मजन्मान्तरे क्रमिकोत्थानेन पुनश्चापि,
जन्मजन्मान्तरे गूढानुभवेन चाथ पुंसाम् ।
जन्मजन्मान्तरे संस्कारपरिमार्जनेन च,
पूजास्था जायते कस्यचिद् देवकृपया ॥

जन्म जन्मान्तरों में क्रमिक उत्थान के द्वारा और पुनः जन्मजन्मान्तरों में गूढानुभवों के प्राप्त होने पर, मनुष्यों के संस्कारों के परिमार्जित होने पर कई जन्मों के बाद अवसर प्राप्त होता है तब जाकर कहीं पूजा अर्थात् ईश्वर को मानने की बुद्धि और उसे पूजने की आस्था मन में आविर्भूत होती है ।

By gradual development in successive births and again by having deeper experience in many lives, and further by refinement of behaviour and taste in many births, one is destined to have a bent of mind and faith in God and worshipping Him by His grace.

(35)

पूजया देवकृपा, पूजया चित्तशुद्धिः ।

पूजयाथाहंशुद्धिः पूजया परा बुद्धिः ॥

पूजा से देवकृपा होती है, पूजा से चित्तशुद्धि होती है, पूजा से अहं शिथिल होता है, और पूजा से पराबुद्धि प्राप्त होती है ।

By prayer ensues the divine Grace, by prayer mind is purified, by prayer ego is diluted and by prayer, supra-intellect is achieved.

(36)

पूजयाथ दैवं साहाय्यम्, पूजया च सर्वसौहार्दम् ।
पूजया सांसारिकसिद्धिः, पूजया परमार्थलाभः ॥

पूजा से दैवी सहायता प्राप्त होती है, पूजा से सब के साथ सौहार्द बनता है, पूजा से सांसारिक सिद्धि होती है और पूजा से परमार्थ लाभ होता है ।

There is divine grace by prayer; prayer leads to friendship with all, prayer leads to worldly-success, and also prayer blesses with the knowledge of Final Truth.

(37)

पूजया सर्वत्रेशभावः, पूजया तेज ओजस्विता ।
पूजया त्रितापनाशनम्; पूजया सुखेन देहान्तः ॥

पूजा से सर्वत्र ईशभाव प्राप्त होता है, पूजा से तेज और ओज भी बढ़ते हैं, पूजा से तीन प्रकार के तापों का नाश होता, और पूजा से सुख पूर्वक देहान्त होता है ।

There is feeling of God, here and every where by prayer. Prayer also enhances (promotes to) magnetism and strength. Prayer is also responsible for alleviation of three types of agonies. And by prayer, the death is easy, viz., without pain.

(38)

पूजायां यदि चित्तम्, तर्हि पूजायाः फलम्।
अन्यत्र यदि चित्तं तर्हि तत्रत्यं फलम्॥

पूजा में यदि चित्त है तभी पूजा का फल मिलता है। यदि चित्त पूजा में न हो कर अन्यत्र चला जाता है तो वहीं का फल प्राप्त होता है।

If the mind is in prayer, then prayer is successful; if mind goes elsewhere during prayer, then the result which we get, is as per inclination of mind (where it has gone).

(39)

पूजायाः भद्र! स्पष्टप्रभावः,
तत्कालतः आध्यात्मिकस्तरे।
सांसारिकता तमःप्रधाना
प्रभावोऽत्र तु कालेन सिद्धः ॥

अरे भाई! पूजा का, आध्यात्मिक स्तर पर, तत्काल प्रभाव होता है परन्तु क्योंकि सांसारिकता तमस् प्रधान है, इसलिये यहाँ पूजा का फल अभिव्यक्त होने में समय लगता है।

O My friend! The effect of prayer is there and then at spiritual level. The world is gross because of Tamas Guna, hence it takes time to show the effect over here.

(40)

परमेश्वरे हि श्रद्धा पूजा, परमेश्वरस्य जपः पूजा ।
पूर्वेषां वाक्यमननं पूजा, तत्त्वस्य चानुचिन्तनं पूजा ॥

परमेश्वर में श्रद्धा रखना भी पूजा है, परमेश्वर का जप भी पूजा है । पूर्वजों के वाक्यों का मनन भी पूजा है और तत्त्व का अनुचिन्तन भी पूजा है ।

To have faith in God is also prayer, to chant the name of God is also prayer. To meditate upon the words of predecessors is also prayer and to reflect upon the nature of Ultimate Truth is also prayer.

(41)

परमावर्णनीयं किञ्चिद् दार्शनिकाः तत्त्वशक्तिभ्यामालपन्ति,
ब्राह्मणा ब्रह्ममायेति वैष्णवा विष्णुवैष्णवीभ्यां तथा
शिवशिवानीभ्यां शैवास्तर्केण भक्त्या प्रज्ञया प्रतिपादयन्ति,
तत्त्वं तु वस्तुतोऽनिर्वाच्यं यादृशं तत्तथा मत्वा नमस्क्रियते ।।

परम अवर्णनीय किसी (सिद्धान्त) को दार्शनिक लोग तत्त्व शक्ति कह कर पुकारते हैं। ब्राह्मण उसे ब्रह्म और माया कहते हैं। वैष्णव उसे विष्णु वैष्णवी के रूप में अभिव्यक्त करते हैं। शैव लोग तर्क भक्ति और प्रज्ञा के द्वारा शिव और शिवानी के रूप में प्रतिपादित करते हैं। तत्त्व तो वस्तुतः अकथनीय है। वह जैसा भी है उसे उस रूप में ही नमस्कार किया जा रहा है।

The philosophers describe the extremely indescribable principle as Truth and Energy (Shakti). The cult of Brahmanas call it Brahman and Maya; Vaishnavas call it as Vishnu and Vaishnavi; the Shaivas call it through logic, devotion and wisdom as Shiva and Shivani. The Truth, in fact, is indescribable. We pay our homage to it, as it is.

(42)

केनापि नाम्ना तत्त्वं त्वया मान्यम्,
तत्त्वं सच्चिदानन्तेशोऽथ ध्येयम्
अहंभावो निमित्तमेवं ज्ञेयम्;
स्मारं स्मारं स्वरूपं पुनराप्यम् ।

तत्त्व को कोई भी नाम दे देवें, परन्तु यह अवश्य ध्यान रखें कि तत्त्वं अर्थात् ईश- सच्चिदानन्त स्वरूप है। अहं भाव को निमित्तमात्र जानिए। ऐसे ध्यान करते - करते अपने सत् चित् अनन्त स्वरूप को पुनः प्राप्त हो जाईए।

Let the truth be given any name but be careful that it must be understood as Existence-Consciousness-Infinite (within and without) you must know that ego is, just as an instrument. By continuous reflective meditation, you should restore to your original nature.

(43)

भृङ्गः कीटकान् सम्मोह्य, मृत्तिकागृहेषु निपात्य तान् ।
उपरि भूँ भूँ ध्वनिं करोति; ध्यानेनैवान्तःस्था भृङ्गायन्ते ॥

भृङ्ग एक प्रकार का बड़ा कीड़ा, छोटे छोटे कीड़ों को डंक द्वारा सम्मोहित करके घर के दरवाजों के पीछे गीली मिट्टी के स्वनिर्मित कोषों में बन्द कर देता है और फिर उन कोशों के ऊपर भूँ भूँ आवाज़ करते मंडराता रहता है। उस भूँ भूँ आवाज़ को निरन्तर सुनते रहने से बन्द कीट भृङ्ग के रूप को ग्रहण कर लेते हैं। (यह ध्यान की महिमा है)

Bhringa, a kind of slightly bigger insect, stings smaller insects and making them semiconscious, shuts them in mud-made shells and flies over these shells (Cells) making Brim Brim sound. In this way, the shut-ins are converted to Bhringas.

(44)

अन्तर्मननानुरूपं हि बहिर्,
बहिर् दर्शनानुरूपं चान्तरम् ।
यथा यथोपासते तद् भवति;
सत्यसंकल्प्या मनोमया मताः ॥

अन्तर्मनन के अनुरूप ही बाहर दिखाई देने लगता है और ऐसे ही बाहर संसार में नित्य ध्यान करते रहने से अन्दर का सोच विचार भी वैसे ही हो जाता है । जैसे ध्यान में लीन कोई रहता है वह वैसा ही हो जाता है । सारे मनोधारी जीव ध्यान के अनुरूप, संकल्प के अनुरूप हो जाते हैं ।

As one thinks internally, so he sees outside and likewise if he remains engrossed in the external world so he starts thinking. As he meditates so he becomes. All, those possessing mind, become, according to the disposition of their mind.

(45)

मनोमयो मनुष्यः, मननशीलो हि सः ।
हीनेन हीनो हि सः, उच्चैः सह स उच्चः ॥

मनोमय मनुष्य है, अर्थात् वह मननशील है । हीन सोच से वह हीन हो जाता है और ऊँची सोच से वह उन्नत हो जाता है ।

Man is possessed of mind and hence he is always a thinking being. Thinking small, he becomes small, Thinking high, he becomes high.

(46)

ऋषिभिः साक्षात्कृतं तत्त्वमेव मनसा ध्येयम् ।
नो चेद् हानिर्भवति दुर्गतितरां ततो गच्छति ॥

ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत तत्त्व का ही मन से ध्यान करना चाहिये अन्यथा हानि होती है और मानव दिनों दिन दुर्गति को प्राप्त होता जाता है ।

The truth realized by seers only is to be meditated on by your mind, otherwise, you lose and there is successive deterioration of life conditions.

(47)

असन् एव स भवति असद् ब्रह्मेति चेद् वेद ।
अस्ति ब्रह्मेति चेद् वेद सन्तमेनं ततो विदुः ॥

तै.उप.2.6.1.

जो ब्रह्म को अर्थात् परम तत्त्व को असत् मानता है वह स्वयं ही असत् हो जाता है और जो मानता है ब्रह्म अर्थात् परम तत्त्व है, वह स्वयं सत्तावान् हो जाता है ।

He who believes that there in Ultimate Truth he starts existing well and he who takes it that it does not exist, he loses his own existence.

(48)

**यथाध्येयं तथा गतिः सिद्धमेतत् परीक्षया ।
विविच्यातो ध्यातव्यं सिद्धानां सचेतका मतिः ॥**

जिस प्रकार का ध्येय (ध्यान करने योग्य विचार या वस्तु) होती है वैसी गति अर्थात् लक्ष्य प्राप्त होता है, ऐसा सिद्ध लोगों ने परख परख कर देख लिया है। अतः ध्यान करने योग्य वस्तु या विचार का, सोच समझ कर चयन/निर्णय करना चाहिये-ऐसी सिद्धजनों की सचेत करने वाली राय है।

As is the mode of meditation so is the achievement, is the conclusion of the accomplished people. Therefore, one should choose the object or thought of meditation carefully. This is the cautioning suggestion of the experts in the area.

(49)

जड़ो जड़ें चेतनश्चेतनेनानन्तेनानन्तस्तथा ।
यथा ध्यातुर्ध्यातव्यमस्ति सिद्धिर्भवति तस्य तादृशी ॥

जड़ के ध्यान से जड़, चेतन के ध्यान से चेतन और अनन्त के ध्यान से ध्याता अनन्त हो जाता है। ध्याता के ध्येय का जैसा स्वरूप होता है, उसी अनुरूप ध्याता, ध्यान करते-करते हो जाता है।

By meditating upon inanimate, one becomes inanimate, by meditating on animate, one becomes animate and through the meditation of infinite, one becomes infinite. As is the nature of the object of meditation, so becomes the meditator.

(50)

दीर्घेण तपसा पूर्वजैः तत्त्वस्य स्वरूपमधिगतम् ।
अवधानेन ध्यातव्यं निश्चयेन तत्कल्याणकरम् ॥

दीर्घ तप द्वारा हमारे पूर्वजों ने तत्त्व का स्वरूप जाना। ध्यान पूर्वक उसका स्मरण करना चाहिये। निश्चित रूप से ऐसा करना कल्याणकारी होता है।

By austere long penance, our predecessor realized the nature of Truth. That must be meditated upon with concentration. It is certainly, beneficial, leading to well-being.

(51)

येन केन प्रकारेण मानवोऽहंसंकीर्णतया भेदत्वं गतः ।
सच्चिदानन्तमिति स्वरूपाधिगमेन स्वस्थः पुनः स्वरूपस्थः ॥

जैसे-तैसे मानव अहंकार के कारण संकीर्णता और भेदभाव को प्राप्त हो गया है । जब वह सच्चिदानन्त स्वरूप को पुनः प्राप्त कर लेता है तब वह अपने आप में टिक जाता है और अपने स्वरूप को प्राप्त हो जाता है ।

Somehow man has confined himself to ego and has thus been established to the behaviour of differences. When he again knows his true nature: Existence-Consciousness-Bliss, he is restored to himself and is established in his true nature.

(52)

भेदे भयमस्ति, अभेदे चाभयम् ।
सर्वमत्राद्वैतम् अभ्यासेनानन्दम् ॥

भेद में भय है, अभेद में भय नहीं रहता। यहाँ जो भेद दिखाई दे रहा है वह वस्तुतः अभेद ही है। अभ्यास करते - करते ऐसा अनुभव होने लगता है और फलतः आनन्द की अनुभूति होती है।

There is fear when there is difference. There is no fear when there is non-difference. In fact, there is non-duality. This is confirmed on practice and this leads to bliss.

(53)

मनसैवानुद्गृष्टव्यं नेह नानास्ति किञ्चन ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥

बृ.उप. 4.4.19.

मन से समझना चाहिये कि यहां दिखाई देने वाली विविधता वस्तुतः नहीं है। जो यहाँ संसार में विविधता को सत्य मानता है वह जन्म मृत्यु के चक्र में ही पड़ा रहता है।

Through mind, one should understand, that there is no multiformity of any kind. He is led from death to death i.e., continues the cycle of birth and death, who is grounded here in multiformity i.e., who takes multiformity as true.

(54)

तदेव भजनीयं येनाभेदतामनन्ततां सर्वज्ञतामीयात् ।
इदमस्य स्वरूपमेष पुरुषार्थः एषैव च परमा गतिः ॥

उसी का भजन करना चाहिये जिससे अभेदता, अनन्तता और सर्वज्ञता प्राप्त हो। यही उस (साधक) का स्वरूप है, यही पुरुषार्थ है और यही उस द्वारा प्राप्त करने योग्य परम गति है।

Only that should be meditated upon by which the meditator may rise above differences and be established in Non-duality, Infinite and Omniscience. This, in fact, is, his true nature, this is what he is to achieve and this is what is his final goal.

(55)

परमस्वरूपं हि सर्वेषां वेदेषु ब्रह्मोत्पत्तिभिधीयते,
आत्मा तत्सर्वेषां सच्चिदानन्दमिति तैत्तिरीये निरुक्तम् ।
चिदन्तर्जातसंकल्पशक्त्या जगदन्तं निर्मेयकत्वाद्;
मापकत्वाद्वानन्तं स्वमाभासैः चिदेव मायी बहुलिङ्गी ॥

वेदों में, सबका परम स्वरूप ब्रह्म बताया गया है। वह ही सबका आत्मा, तैत्तिरीय उपनिषद् में सत्-चिद्-आनन्द स्वरूप कहा गया है। चित् के अन्दर उठी संकल्प शक्ति रूप तरंगों द्वारा अनन्त जगत् को रचने के कारण और स्वयं अनन्त स्वरूप को आभासात्मक रूप के द्वारा विभक्त सा दिखाने के कारण चित् को ही माया कारक तथा बहुरूपिया कहा गया है।

Brahman is said to be final cause of all, in the Vedas. He is said to be the individual essence of everyone and all as Existence-Consciousness-Bliss in the Taittiriya Upanishad. He, on account of projecting all the worlds through the imaginative flashes, rising in consciousness, on account of, limiting the pervasiveness through limiting adjuncts of apparent names and forms, is known as upholder of Maya, the creative agent and as having multiple forms.

(56)

सच्चिदानन्दं ब्रह्मैव शिवोऽप्यन्यत्राथोच्यते,
शिवानी शिवस्य हि चित्तिः शक्तिः त्रिगुणात्मिका ।
सत्त्वेन बलेन ह्येषा जगत्तूद्भावयति;
राजसेन पालयति तामसेन तारयति ॥

ब्रह्मको-सच्चिदानन्द को ही अन्यत्र कई ग्रन्थों में शिव नाम से भी कहा गया है । शिवानी शिव की त्रिगुणात्मिका चित्ति नामक शक्ति है । सत्त्व गुण के बल से यह जगत् की वैचारिक उद्भावना (परिकल्पना) करती है, रजस् गुण से उन्हें रूप देकर पालती है और तमस् गुण से उन्हें तारती है (जन्मजन्मान्तरों में भेज कर उनका सम्मार्जन करती हैं) ।

Brahman-Existence-Consciousness-Bliss, is also known as Shiva elsewhere. Shivani, the Energy of Lord Shiva is known as Chitti Shakti. By sattva guna, world is planned by her, by rajas, it is formed and sustained and by tamas guna, She recycles it for new forms.

(57)

चिच्छक्तिः सृष्ट्यभिमुखा,
त्रिगुणात्मिकाभिजायते ।
चित्तिराख्या ततो भवति;
त्रिलोकेश्वरी मायेश्वरी ॥

चित् शक्ति सृष्टि के आरम्भ में त्रिगुणात्मक हो जाती है। तब उस का नाम चित्ति हो जाता है। तीनों लोकों का निर्माण करने के कारण इसे त्रिलोकेश्वरी तथा मायेश्वरी भी कहा जाता है।

Cit-Shakti, in the beginning of Creation, gets Herself possessed of three gunas. It is known then as Citti-Shakti. On account of creating the three worlds, it is known as Trilokeshwari or Mayeshwari.

(58)

गुणा वस्तुतः शक्तेरचना-प्रक्रिया,
सत्त्वेन रचनायाः प्रारूपविचारः ।
रजसा रूपाकारप्रदानप्रयत्नः ;
तामसेन सम्पन्नता पुनर्विकरणम् ।

गुण वस्तुतः शक्ति की रचना प्रक्रिया है। सत्त्वगुण के द्वारा रचना का प्रारूप बनाया जाता है। रजस् गुण द्वारा रूप आकार प्रदान किया जाता है और तमस् गुण द्वारा पूर्णता प्राप्त करने के अनन्तर विकरण (क्षय) आरम्भ होता है।

Gunas, in fact, represent the creative process of Shakti (Mother-goddess). Through sattva-guna, the creation is planned, through rajas-guna, the creation is formed and protected and through tamas-guna the creation is finalized and again set for recycling.

(59)

शक्त्या योगेन हि गुणेषु नित्यं परस्परता,
एकान्तेन प्रचरितुं नित्यमक्षमा हि गुणाः ।
एको मुख्याभूयाथान्याभ्यामीरितः समर्थः सः ;
कार्ये प्रवर्तितुं क्षमास्ते नियमिता हि शक्त्या ॥

शक्ति के योग से गुणों में नित्य परस्परता है । एकान्त में, वे कार्य करने में असमर्थ हैं । एक मुख्य हो जाता है और अन्य दो जब उसे प्रेरते हैं तब वह कार्य करने में समर्थ होता है । इस प्रकार तीनों शक्ति द्वारा संयमित होकर ही कार्य करते हैं ।

Because of Shakti (being at the base), there is mutuality amongst gunas. They cannot function in isolation. When one is propelled by others only then it is capable of functioning. And that too under the controlling supervision of Shakti

(60)

शिवान्या विना शिवस्य न बलं न ज्ञानं न नाम ।
मधुरिम्णा विना यथा मधुनो नान्यत्प्रतीयमानम् ॥
शिवेन विना नितरां न हि शिवान्या भावः ।
मधुना विना यथा न मधुरिम्णाश्च भावः ॥

शिवानी (शक्ति) के बिना शिव का न बल है, न ज्ञान है, न नाम है, मधुरिमा के बिना जैसे मधु की प्रतीति का अन्य कोई ज्ञान साधन नहीं। शिव के बिना शिवानी (शक्ति) का भी नितान्त अभाव है जैसे मधु के बिना मधुरिमा का अभाव है।

Without Shivani (Energy), there is neither power, nor knowledge, nor even name of Shiva as there is no other means of knowing honey without the taste of sweetness. Shivani has also no existence without Shiva as there is no sweetness without sweetmeat.

(61)

शिवे शक्तिः 'इ' रूपा,
तया विना स शवः ।
निरालम्बा शक्तिः क्व;
एकीभूय तौ शिवः ॥

शक्ति, शिव में 'इ' रूप से विराजमान है। यदि शक्ति रूप 'इ' को शिव में से हटा दिया जाये तो शिव-शव हो जाता है। सहारे के बिना शक्ति असम्भव है। अतः शक्ति के सौजन्य से ही शिव है।

Shakti resides in Shiva as letter 'i.' If 'i' letter is removed from Shiva, He becomes Shava (Corpse). Shakti can also not exist without Shiva. Both of them, together, are Shiva.

(62)

शक्त्यैव संसारैश्वर्यं शक्त्यैव शिवस्येशत्वम् ।
शून्य इवाशक्त्याः शिवोऽनिच्छया यथा मनः ॥

शक्ति से ही संसार रूप ऐश्वर्य है और शक्ति ही शिव की शासनात्मक शक्ति है। शक्ति के बिना शिव वैसे ही शून्य है जैसे इच्छा शक्ति के बिना मन शून्य सदृश प्रतीत होता है।

Mother-Goddess (Shakti) is what appears as world. Shakti is also the controlling power of Shiva. Without Shakti, Shiva becomes void-like as without desire mind looks, nothing-like.

(63)

पारमार्थिकस्तरे हि भद्र ! धर्मधर्मिणोरद्वयमेकमेव ।
ओजस्तेजसी अग्रिरग्रिश्रैवौजस्तेजसी पार्थक्ये च शून्यता ॥

हे प्रिय ! पारमार्थिक स्तर पर धर्म और धर्मी एक ही हो जाते हैं ।
ओज और तेज मिलकर ही जैसे अग्नि है । एक के अभाव में अन्य का
भी अभाव है ।

Oh Dear aspirant! be it well known to you that the
character and the characterized are one at the ultimate
level as heat and light both culminate to form fire. If one
of them is absent, the other is also absent and there is
null and void.

(64)

चित्परं तत्त्वं निर्विषयम्,
संसारतोऽप्रत्यक्षतो ज्ञम्।
ज्ञानप्रयत्नधर्मि च तद्;
स्वतन्त्रं तत्सृष्टिलययोः॥

चित् परम तत्त्व है और निर्विषय है। वह तो संसार की सत्ता के द्वारा अप्रत्यक्षतः जाना जा सकता है क्योंकि अगर चित् नहीं है तो संसार भी नहीं हो सकता। वह संसार का कारण है (जैसे वृक्ष का कारण बीज होता है) चित् का धर्म, ज्ञान और प्रयत्न है और सृष्टि और प्रलय करने में वह स्वतन्त्र है।

Consciousness is the Final Cause. It is only indirectly known by the world as world is its creation. Knowledge and efforts are the characteristics of Consciousness. It is free to create or destroy the world.

(65)

ज्ञानप्रयत्नधर्मि चिद्, अनन्ततया पूर्णं तद् ।
प्रयत्नशक्तेरन्त्यं चेद्, ज्ञानं तर्हि हि शून्यवत् ॥

चित्, ज्ञान प्रयत्न धर्म से सम्पन्न है और अनन्तता इसकी पूर्णता है। यदि स्वातन्त्र्य अर्थात् प्रयत्न शक्ति का अभाव हो तो ज्ञान की प्रतीति भी शून्य हो जाती है।

Consciousness is inherent with the characteristics of knowledge and effort. If the free will or freedom to do, is absent, Consciousness appears as null and void.

(66)

ज्ञाने संकल्पतरङ्गाः,
शक्तिरिव चोदीरिता ।
सिसृक्षैषाथ च सृष्टिः;
एषैव ब्रह्मसाक्षिणी ॥

ज्ञान अर्थात् चित् में संकल्प की तरङ्गे ही शक्ति नाम से जानी जाती हैं यही त्रिगुणात्मिका सिसृक्षा भी कहलाती है और यही ब्रह्म के अस्तित्व के लिये साक्ष्य भी है ।

The unending stream of imagination goes on and on, in Consciousness. This is known as Shakti. This is also known as the threefold (trigunatmaka) creating will. This is the evidence of the existence of Ultimate Consciousness (Brahman).

(67)

शक्तिरेव ह्यहंरूपा,
शक्तिः प्राणबलरूपा ।
शक्तिः सर्वेन्द्रियरूपा;
शक्तौ निष्ठा कृपा मोक्षः ॥

शक्ति ही अहं रूपा है, शक्ति ही प्राण-बलरूपा है। शक्ति सर्व इन्द्रिय (तथा उनकी विषयरूपा-सृष्टि) है। शक्ति में निष्ठा होना शक्ति की कृपा और मोक्ष है।

Shakti is visible in the form of ego, in the form of vital breath and as natural forces of the world. Shakti is visible in the form of sensory objects within and without. Faith in Shakti, is the grace as well as boon of liberation.

(68)

शक्तिरहन्तादायिनी,
शक्तिज्ञानप्रच्छादिनी ।
शक्तिज्ञानप्रसादिनी;
शक्तौ निष्ठा कृपा मोक्षः ॥

शक्ति ही अहंभाव की प्रदायिनी है और शक्ति ही ज्ञान की प्रच्छादिनी और प्रदायिनी भी है (शक्ति ही ज्ञान का प्रकाश भी अपने भक्तों के लिये करती है) । शक्ति में अटूट निष्ठा ही शक्ति की कृपा और मोक्ष का प्रसाद मानना चाहिये ।

The Mother-goddess gives the sense of ego and covers the knowledge. On being pleased she gives knowledge. The intense faith in Divine-Power is to be taken as her blessing leading to liberation.

(69)

दार्शनिकानि तत्त्वानि,
प्राकृतिकविभूतयः ।
देवतारूपैश्चोह्यन्ते;
भक्तैर्दैनिकार्चनाय ॥

दार्शनिक तत्त्वों तथा प्रकृतिक विभूतियों (यथा सूर्य, चन्द्र, अग्नि, जल इत्यादि) को, भक्त, देवताओं का रूप, अपनी श्रद्धा भक्ति परक कल्पनाओं द्वारा देकर, नित्य पूजते हैं ।

The devotees give the forms of gods to certain philosophical principles and some excellent manifestations of nature (like sun, moon, water, fire, light etc.) through the devotional fervour of their imagination to worship them in their daily life.

(70)

रूपं तासां काल्पनिकम् ।
स्वरूपं च दार्शनिकम् ।
स्वरूपस्तुत्याभ्यासेन;
भक्तेभ्यः प्रत्यक्षा हि ताः ॥

ऐसे देवताओं का रूप तो काल्पनिक है परन्तु उनका स्वरूप दार्शनिक है । स्वरूप धर्मों की ध्यानात्मक स्तुति और अभ्यास से, वे देवता, भक्तों के लिये प्रत्यक्षतः दर्शनीय हैं ।

The forms of these gods are imaginary but their essential nature is as per philosophical concepts of principles for which they stand for. They are directly perceptible to the devotees through the repetition of the eulogies of their true nature.

(71)

शिवो निर्विषयज्ञानं शिवानी तस्य सिसृक्षा,
अनिर्वाच्यमेवमर्द्धनारीश्वरेणोवोह्यते ।
संयुक्तविग्रहेण भेदमपोह्याभेदः पुष्टः ;
ध्यानाय प्रतीकात्मकं रूपं पूर्वजैः कल्पितम् ॥

शिव निर्विषयज्ञान तत्त्व है (इसे इन्द्रिय अन्तःकरण नहीं जान सकते), शिवानी शिव की सृष्टि सृजन की इच्छा शक्ति है। ऐसे अनिर्वाच्य तत्त्व की अर्धनारीश्वर के रूप में परिकल्पना की गई है। संयुक्त शरीर द्वारा-दोनों में भेद नहीं है- ऐसा विचार पुष्ट अथवा प्रतिपादन करने हेतु किया गया है। हमारे पूर्वजों ने ध्यान हेतु ऐसे प्रतीकात्मक रूप की परिकल्पना की है।

Shiva is unknowable Transcendental Consciousness. Shivani is His creative will. They have been designed halfman and half woman through imagination, as a symbol for worshipping them.

(72)

शिवः शिवान्यामोतः प्रोतः,
शिवानी एवं शिवे तथा ।
एतयोरन्योऽन्यभावः;
अनयोरेवमद्वैतता ॥

शिव शिवानी में ओत प्रोत है, ऐसे ही शिवानी शिव में ओत प्रोत है। इन दोनों में परस्पर भाव है। इसलिये ये दो नहीं अपितु एक ही है, अद्वैत हैं।

Shiva is part and parcel of Shivani, and also, Shivani is likewise for Shiva. There is mutuality amongst them. They, infact, are not two. They are rather one nondual.

(73)

शिवस्य कृते कृता पूजा,
शिवानीमपि च गच्छति ।
शिवान्याः कृते कृतमेवम्;
शिवस्यापि कृते च तद्धि ॥

शिव के लिये की गई पूजा शिवानी को भी प्राप्त होती है और शिवानी के लिये कुछ भी किया गया शिव के लिये भी हो जाता है ।

The worship done for Lord Shiva, also goes to Shivani. Like-wise anything performed for Shivani, also serves to stand for service of Shiva.

(74)

पारमार्थिकं तत्त्वं हि पुरुषरूपेणोव स्तूयते,
सृजनाय तस्य क्रियापरं रूपं शक्त्येव कीर्त्यते ।
वस्तुतस्तयोस्त्वभेदत्वं भेदो ननु परिकल्पितः ;
एष खलु वैचारिको हि वस्तुतो न पारमार्थिकः ॥

पारमार्थिक तत्त्व ही पुरुष के रूप में प्रशंसित है । सृजन क्रिया हेतु उसी को स्त्री के रूप में संस्तवित किया जाता है । वस्तुतः दोनों में अभेद है । ऐसा मात्र दार्शनिक है न कि वास्तविक ।

The Transcendental Principle is projected as man and the very same principle when is volitional for creation-sake, is known as woman. This, in fact, is only for philosophical purpose. The difference between them in fact, is not actual.

(75)

नैव स्त्री न पुमान् न चैव नपुंसकः
यद् यद् रूपेण स्तोतारः तं प्रस्तुन्वन्ति ।
तेन तेन रूपेण तेभ्यः स भवति;
तेन तेन च तान् निश्चयेन रक्षति ॥

परम तत्त्व, न स्त्री है, न पुरुष है और न ही नपुंसक है। जिस जिस रूप से स्तोता गण उसकी स्तुति करते हैं, वह, वैसा वैसा हो जाता है और वैसा वैसा बन कर उनकी निश्चय रूप से रक्षा करता है।

The Ultimate Principle is neither man, nor woman nor eunuch. As the worshippers pray him, he becomes likewise. He assumes form accordingly, and surely protects them through that very form.

(76)

रूपमरूपं रूपारूपाभ्यामन्यतरः,
कल्प्योऽकल्प्यः कल्प्याकल्प्याभ्यामन्यतरः ।
चिदचिच् चिदचिद्भ्यां चाप्यैवान्यतरः ;
भक्तहेतोः वस्तुतः स हि श्रद्धामयः ॥

वह रूपवान् है, अरूपवान् है और इन दोनों से अन्य है। वह कल्पना अनुसार है, अकल्पनीय है और इन दोनों से अन्य है। वह चेतन है, अचेतन है और पुनः इन दोनों से अन्यथा है। वस्तुतः वह भक्तों की श्रद्धा अनुसार है।

He is with form, without form and also other than both. He is as per imagination and otherwise of our imagination and still other than both. He is consciousness, He is non-consciousness and other than both. In fact, He assumes shape and character as per the faith of His devotees.

(77)

सगुण ईशो निर्गुणः,
उभावनुभावथवा ।
वस्तुतोऽनिर्वाच्य ईशः;
यथाश्रद्धं भक्तेभ्यः सः ॥

क्या ईश रूपवान् है अथवा अरूपवान् अथवा दोनों हैं अथवा दोनों ही नहीं है। ईश वस्तुतः अनिर्वचनीय है। भक्तों की श्रद्धा अनुरूप वह हो जाता है।

Has Lord form? Has Lord no form? Has He both or neither? In fact, He is indescribable. He becomes according to the faith of devotees.

(78)

अप्रत्यक्षोऽपि संसारे स प्रत्यक्षः,
अरूपोऽपि विश्वरूपेण रूपवान् ।
यदि हि नितान्तमप्रत्यक्षं भवेत्;
केन पूज्यो जिज्ञास्य ऊह्योऽपोह्यश्च ॥

अप्रत्यक्ष होते हुये भी वह संसार के रूप में प्रत्यक्ष है। अरूप होते हुये भी विश्वरूप में रूपवान् है। यदि वह नितान्ततः अप्रत्यक्ष रहता तो कौन उसे पूजता, कौन उसकी जिज्ञासा करता और कौन उसके विषय में दार्शनिक ऊहापोह करता।

In spite of being invisible, He presents Himself in the form of world. In spite of being formless, He assumes all forms of the world. Had He been invisible altogether, who would have worshipped Him, would have been curious about Him and would have surmised about his characteristics.

(79)

न तं विदाथ य इमा जनाना
ऽन्यद् युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रवृत्ता जल्प्या चा-
ऽसुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥

-ऋवे. x.82.7

तुम उसे नहीं जानते जिसने यह संसार पैदा किया है। वह आप के मध्य में अन्यरूप से प्रकट हो गया है। उस के सम्बन्ध में कथन करने वाले कुहरे से प्रवृत्त है और अटपटे कथन से स्वयं को अतृप्त मानते हैं (असमर्थ समझते हैं)।

You do not know Him, who has produced this world. He, in fact, has become elsewise amongst you. Those who try to express Him, are, in reality surrounded by mist, and their words to express Him are just babbling as they themselves feel dissatisfied in their effort.

(80)

तत्त्वचिन्तनगूढस्तरे,
भाषा खल्वभाषा भवति ।
कथने तदा ह्यसामर्थ्यम्;
अनुभवस्तत्र प्रामाण्यम् ॥

तत्त्व चिन्तन के गूढ स्तर पर भाषा वस्तुतः अभाषा (असमर्थ) हो जाती है । तब कथन में असमर्थता प्रतीत होती है । वहाँ मात्र अनुभव ही प्रामाण्य है ।

At the highest level of reflection about the Ultimate Truth, language, becomes incapable of expressing the Truth. Then only realization has the scope to grasp the Truth.

(81)

तर्कस्ततः प्रत्यावर्तते,
युक्तिस्तत्र त्वसम्भवा ।
मूकस्येव ह्यास्वादनम्;
अनुभवस्य तत्र प्रामाण्यम् ॥

तर्क वहाँ से लौट आता है । युक्ति वहाँ असमर्थ हो जाती है । वहाँ का आस्वादन अथवा अनुभूति मूक प्रायः होती है ।

The logic and evidence both fail there. Only the silent realization of the truth is for verification.

(82)

अन्ति सन्तं न जहात्यऽन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥

अथर्ववेद 10.8.32

नित्य सत्य, सांसारिक अभिव्यक्ति से कभी रहित नहीं होता । नित्य सत्य अभिव्यक्तियों को सतत रूप से देखने में ही नहीं अटका रहता अर्थात् उनमें रमता नहीं । यह अभिव्यक्त संसार उस परम देव अथवा सत्य का काव्य है- जो न तो कभी मरता है और न ही कभी जीर्ण होता है ।

The Eternal Truth is never bereft of the worldly manifestations nor He beholds it constantly (had He been engrossed, world would not have changed). See the wonderous poetry of world of Divine, which neither dies nor gets old.

(83)

न ज्ञानेन्द्रियैस्तद् ग्राह्यम्,
न चान्तःकरणादिभिः ।
समाधावचले चित्ते;
स्वयं स्वकं तत्पश्यति ॥

परम तत्त्व न तो ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्राह्य है और न ही अन्तःकरण द्वारा । अचल समाधि के समय मन में, वह स्वयं ही स्वयं को देख सकता है ।

The Eternal Truth is neither graspable by senses nor by internal organs of knowledge (mind, intellect etc.). In the tranquillity of meditated mind, he sees himself by himself.

(84)

नाकर्मण्यता तेनाभिमता,
संसारे अतो गतिमान् हि सः ।
लयसमाधिः शून्यसमोऽतः ;
संसारे ईशभावो हि श्रेयान् ॥

परम तत्त्व को अकर्मण्यता प्रिय नहीं है अतः वह संसार के रूप में अभिव्यक्त होकर गतिमान है । लय (शून्य) समाधि शून्यता तुल्य है अतः साधक को शून्य समाधि की बजाय संसार में समभाव में, सर्वत्र ईशभाव में रहना अधिक श्रयस्कर है ।

The Eternal Truth does not like immobility, Hence He is manifest in the form of world. The tranquillity of meditational Samadhi is like null and void, hence, the aspirant should, rather, prefer the attitude of equanimity rather than tranquillity of meditation.

(85)

ध्याने यद् यद् दृश्यते,
न तत् तत्त्वदर्शनम् ।
मानसी सिद्धिर्हि सा;
मनःकृत्यं केवलम् ॥

ध्यान करते हुये जो कुछ दिखाई देता है वह तत्त्व दर्शन नहीं ।
वह तो मन की मात्र परिकल्पना ही है जो मन द्वारा रची गई है ।

Whatever is seen during meditation, that is not the
Truth. That is mere imagination of mind fabricated by
mind.

(86)

यत्र निर्विषयत्वम्,
चित्तं यत्राचिन्तकम्।
चित्तमचित्तमत्र;
चिदचिदतीतता ॥

जहाँ (ध्यान अवस्था में) कुछ भी विषय रूप से दिखाई नहीं देता। चित्त चिन्तन करना छोड़ देता है और चित्त जहाँ अचित्त हो जाता है। वह चित् अचित् से अतीत स्थिति है।

When there is nothing visible during meditation, the mind becomes non-mind and there is no thought at all. That is the state beyond consciousness and non-consciousness.

(87)

शून्यमिव यदत्र,
अनिर्वाच्यं ननु तद् ।
इतो जायते जगत्;
परमं तत्त्वं हि तत् ॥

जहाँ सब शून्य तुल्य है, वह अनिर्वाच्य है। इस शून्य सदृश अनिर्वाच्य से ही जगत् की उत्पत्ति होती है। यही परम तत्त्व अथवा परमेश्वर है।

(In meditation) when there is void-like, some thing indescribable. This is the Final Truth whence forth evolves the world. This very is the Final Truth viz., God.

(88)

समाध्यनुभूतिः परमार्थदर्शनाय,
समभावाय रागद्वेषापहाराय च ।
उपनिषत्सु प्रलयो मृत्युतुल्यः प्रोक्तः ;
ईशोऽत्र न रेमे अतो जगदीशो जातः ॥

समाधि अनुभूति परमार्थ अर्थात् परम तत्त्व के दर्शन के लिये है तथा जीवन में राग द्वेष के त्याग हेतु है। उपनिषदों में प्रलय, मृत्यु तुल्य कहा गया है, ईश्वर को यह स्थिति नहीं रुचि अतः वह जगदीश बन गया।

The meditational tranquillity is for the realization of Ultimate Truth. It is also for the sake of going beyond the habit of attachment and hatred. The dissolution is described in the Upanishads as death. Hence, Lord did not cherish it and became Lord of the world.

(89)

प्राणन्नेव प्राणो नाम भवति वदन् वाक् पश्यँश्चक्षुः,
शृण्वन् श्रोत्रं मन्वानो मनस्तान्यस्यैतानि,
कर्मनामान्येवाकृत्स्नानि तानि,
यत्रैतान्येकं भवन्ति तत्सत्यं तद्ब्रह्म तत्परमार्थम् ॥

—बृ.उप.1.4.7 (पाठभेदसमेतम्)

प्राण लेते ही वह प्राण बन जाता है, बोलते ही वाग्, देखते ही चक्षु, सुनते ही श्रवण (कान) बन जाता है, मनन करते ही मन बन जाता है । ये उसके कर्म परक नाम है । ये अपूर्ण हैं । जहाँ ये सभी एक हो जाते हैं, वही सत्य है, वही ब्रह्म है, वही परमार्थ है ।

Breathing, He becomes breath, speaking as speech, seeing He becomes eyes, hearing as ear; imagining, He becomes mind. These are His functional names. They are incomplete. Where all these become one that is Truth, that is Brahman and that is Ultimate Truth.

(90)

परमार्थस्याचेतनत्वान्न ज्ञानं न प्रयत्नं न स्वातन्त्र्यम्,
अचेतनादतोऽति विचित्रा सुव्यवस्था सृष्टिरसम्भवा ।
परमार्थस्य चेतनत्वाद् ज्ञानं प्रयत्नं स्वातन्त्र्यं सम्भवम्;
चेतनतत्त्वादेवातो विसृष्टस्य विचित्रा व्यवस्था युक्ता ॥

परमार्थ के अचेतन होने की हालत में, न ज्ञान होता है, न प्रयत्न और न ही स्वतन्त्रता। अतः अचेतन तत्त्व से अतिविचित्र और सुव्यवस्थित सृष्टि कैसे संभव हो सकती है। परमार्थ यदि चेतन होता है तो ज्ञान प्रयत्न एवं स्वतन्त्रता सम्भव है। अतः चेतन तत्त्व से ही विसृष्ट जगत् की विचित्र व्यवस्था संभव है, युक्ति युक्त है।

If the Ultimate Cause be inanimate, there is neither knowledge, nor effort nor even option of freedom to do. Hence from such cause, the wondrous and well organized creation is impossible. If on the other hand, the Ultimate Cause be animate, there will be consciousness, effort and freedom of action. Hence creation is possible and logical only from animate-cause.

(91)

चित् तत्त्वस्याभावे भद्र! संकल्पो व्यवस्था कुतः,
संकल्पशक्त्याश्चाभावे चित्-तत्त्वं भाति शून्यवत् ।
शक्त्या विनातश्चिद् ब्रह्म वेदेषूक्तं शून्यं षण्डम्;
ज्ञानक्रियाद्वयत्वेन स पूर्णः पुरुषः स्रष्टा* ॥

चित् तत्त्व का यदि अभाव हो तो संकल्प और व्यवस्था कैसे सम्भव होगी । और यदि संकल्प शक्ति का अभाव हो तो ज्ञान तत्त्व की प्रतीति ही कैसे होगी, वह तो शून्यवत् प्रतीत होने लगेगा । इसीलिए शक्ति के बिना चिद् ब्रह्म को वेदों में शून्य (अनिर्वचनीय) एवं नपुंसकलिंग में कहा गया है । ज्ञान क्रिया के सम्मेलनात्मक अद्वय भाव से ही वह पूर्ण पुरुष, ईश और जगत् का स्रष्टा होता है ।

If consciousness be absent there will neither be imaginative planning neither the systematic creation. And if the imagination be not there, the consciousness will not be traceable. That is why Brahman without Shakti is called neuter and voidlike in the Vedas. The consciousness associated with volitional energy, the non-dual entity, thus is complete principle of creation.

* स ईश्वरो जगत्स्रष्टा ।

(92)

ईश्वरो निर्विषयज्ञानम्,
जगद्रूपेण प्रत्यक्षः सः ।
सः ननु त्वयि तु सर्वस्वम्;
श्रद्धयातस्त्वया हि मान्यः ॥

ईश्वर निर्विषय ज्ञान है, वह स्वयं ही जगद् रूप से प्रत्यक्ष है । वह तेरे में सब कुछ है । अतः तुझे उसे श्रद्धा पूर्वक मानना चाहिये ।

God (cit) is knowledge beyond any means of perception. It is indirectly inferred through world which is His fabrication. Rather, He Himself has become world. That God is all in all in you. Hence, you must have full faith in His existence (Without his existence nothing can exist).

(93)

गन्तव्यं त्वदीयमनन्तम्,
अनन्तोपासनया पार्यम् ।
मिथ्यात्वे यद्यनुरागः ;
नैराश्यं तर्ह्यनिवार्यम् ॥

आपका गन्तव्य अनन्त है। अनन्त (ईश) की उपासना द्वारा उस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। अगर आप संसार की परिवर्तनशील वस्तुओं में आसक्त हैं तो जिन में आप आसक्त हैं—उनके नष्ट होने पर आपका निराश होना जरूरी है।

Your goal is endless. You can get at it by the prayer of Infinite (God). If you are attached to what is momentary then you are likely to be frustrated on the destruction of that where you are attached.

(94)

कर्म त्वदीयं पाथेयम्,
ज्ञानमीशः ते दर्शनम् ।
जन्मजन्मान्तरे भद्र !
मित्रद्वयं ते ह्यजस्रम् ॥

तेरा कर्म तेरी लम्बी जीवन रूपी साधना-यात्राओं के दरमियान तेरी सारी जरूरतों को पूरा करने वाला पाथेय साधक है । ज्ञान ही तेरा मूल स्वरूप नियामक तत्त्व है । ये दोनों, हे भई ! तेरे जन्म जन्मान्तरों के निरन्तर अभिन्न साथी धर्म है ।

The Karman (effort) is to fulfil the needs of your long cycles of births and death. Knowledge is your intrinsic controller and guide of your personality. Both of them are the part and parcel of your personality in life after life-cycles.

(95)

कर्म त्वदीयपुरुषार्थः,
ज्ञानं तस्य च प्रवर्त्तकम् ।
ज्ञानं चेच्छून्यसमाधिकम्;
पुरुषार्थस्तदाऽसम्भवः ॥

कर्म तेरा पुरुषार्थ है और ज्ञान उसका प्रवर्त्तक है । अगर ज्ञान शून्य समाधि हो जाये तो कर्म रूप पुरुषार्थ असम्भव हो जायेगा ।

Karman (effort) is for the sake of your life and knowledge initiates that. If knowledge be inert, the effort is impossible.

(96)

कर्म त्वदीयपुरुषार्थः,
ज्ञानं तस्य मार्गदर्शकम् ।
अन्योन्यं व्यञ्जके हि ते;
परस्परमुपकारके ॥

कर्म तेरा पुरुषार्थ है और ज्ञान उसका मार्ग दर्शक है । दोनों एक दूसरे के पूरक एवं अभिव्यञ्जक है ।

The Karman viz., effort is your inborn urge of life, the knowledge is the intrinsic means of guiding it. Both of them are complementary to one another and also they hint one another.

(97)

तत्कार्यं तच् चिन्तनीयम्,
नाधिर्न च व्याधिर्यथा ।
यदि जीवनं ह्यस्वस्थम्;
न पुरुषार्थो नोत्थानम् ॥

तुझे वह करना और सोचना चाहिये कि जिससे तेरा जीवन आधि (मनोरोगों) और व्याधि (शारीरिक रोगों) से रहित हो। यदि जीवन अस्वस्थ होगा तो न तो कोई पुरुषार्थ सम्भव है और पुरुषार्थ के अभाव में उत्थान भी सम्भव नहीं।

You should do and think that so that you be free of the mental and physical ailments. If you are unhealthy, there is neither effort nor there is the possibility of upliftment in life.

(98)

तनोः पुष्टिरनुकूलभोजनेन,
मनसः पुष्टिः खलु सदाचारेण ।
बुद्धेः पुष्टिश्च जायते सदज्ञानेन;
जीवात्मनः पुष्टिरीशभजनेन ॥

शरीर की पुष्टि अनुकूल भोजन से होती है, मन की पुष्टि निश्चित रूप से सदाचरण से होती है, बुद्धि की पुष्टि सच्चे ज्ञान से होती है और जीवात्मा की पुष्टि मात्र ईशभजन से होती है ।

The body gets nourished by suitable food, mind is purified through good behavior, the intellect is chiseled by true knowledge and soul gets purified by the prayer of God.

(99)

स्वहितस्थ एकाकी भवति,
सर्वहितस्थः सर्ववल्लभः ।
स्वस्थ ईश एकाकी भवति;
सर्वकारकत्वात् सर्वेश्वरः सः ॥

मात्र अपने हित में स्थिति एकाकी हो जाता है । सबके हित में स्थित सबका प्रिय हो जाता है । खुद भगवान् को ही देखिए, जब वह अपने स्वरूप में टिका रहता है तो एकाकी होता है परन्तु जब सब कुछ रच देता है तो सब का सर्वेश्वर कहलाता है ।

One centered to one's personal gains, ultimately, gets isolated and who serves the well-being of others is all popular. The God, when is confined to Himself is alone but when He creates all, He happens to be the Lord of all.

(100)

कर्मणा जीवनोपयोगि संग्राह्यम्,
ज्ञानेन समस्या च समाधेया ।
न एकान्तेन संग्रहे मतिर्विधेया;
न चापि कर्तव्यं कदाप्यनवेक्ष्यम् ॥

कर्म द्वारा जीवन उपयोगी संग्रह करना चाहिए, ज्ञान द्वारा समस्याओं का समाधान करना चाहिये। केवल एकान्तिक रूप से संग्रह करने में ही लीन नहीं रहना चाहिये और न ही कर्तव्य की कभी अनदेखी करनी चाहिए।

By karmans viz., efforts, you should accumulate the useful for life and by knowledge you must solve the problems rising in life. You should neither be absolutely busy in amassing the wealth nor you should ever over look your duties.

(101)

अति सर्वत्र दुःखकरम्,
अति योगक्षेमहारकम् ।
अतीहामुत्र विनाशकम्;
संतुलने अतो मतिर्विधेया ॥

अति सर्वत्र दुःख कारिणी होती है, अति योगक्षेम को हर लेती है, अति इस संसार तथा परलोक दोनों में विनाशकारक होती है । अतः संतुलित चर्या में मन को टिकाना चाहिये ।

Extreme is troublesome everywhere, extreme causes damages to what is to be achieved and what is already achieved. Extreme is neither good in this world nor even in the other world. Hence knowing the repercussions of extreme, one should decide for moderate behaviour

(102)

मर्यादायां धराजले,
मर्यादायां तेजोवायू ।
जीवनाय कल्याणाय;
महद् भयमन्यथा ॥

यदि धरा और जल मर्यादा में रहते हैं, यदि तेज और वायु मर्यादा में होते हैं, तभी जीवन है, तभी जीवन में खुशी और कल्याण है अन्यथा जीवन के लिये विभीषिका और बे-आरामी ही है ।

when, water and earth are within limits of their daily functioning, when fire and wind are within the normal functioning, only then, there is life and well-being. On the other hand, there is great fear and destruction.

(103)

अग्निर्दूरतः सेव्यः,
जलं संस्पर्शेण तथा ।
यथाधर्मं व्यवहारः ;
महद्भयमन्यथा ॥

अग्नि का दूर से सेवन करना चाहिये और जल का संस्पर्श द्वारा सेवन करना चाहिये । जैसा जैसा जिस वस्तु का गुण धर्म है, तदनुरूप वहाँ वहाँ व्यवहार करना चाहिये अन्यथा बड़ी हानि अथवा भय का सामना करना पड़ता है ।

Fire should be employed from distance and water should be used by touch. One should know the nature of things. And in accordance should be the behaviour otherwise one invites a great risk.

(104)

नात्यन्तं गुणवत्किञ्चित्,
न चात्यन्तं निर्गुणम् ।
उपयोगास्तु ज्ञातव्याः ;
प्रयोगाश्चापि वस्तूनाम् ॥

कोई भी वस्तु संसार में न तो आत्यन्तिक रूप से गुणकारी है और न ही गुण रहित है। वस्तुओं का उपयोग और उनका प्रयोग जानना चाहिए।

Neither all is good nor all is bad. You must learn the property and use of things.

(105)

यत्र यदा यत्सेव्यम्,
तत्र तदा तत्सेव्यम् ।
क्वचिद् विषममृतम्;
नात्र किञ्चिद् व्यर्थकम् ॥

जो जहाँ जब उपयोगी हो उसे वहाँ तब उपयोग में लाना चाहिये ।
कभी-कभी विष भी उपयोगी होता है । वस्तुतः इस संसार में कुछ भी
व्यर्थ नहीं है ।

The one what is utilizeable when and where, should
be utilized then and there. At times poison is also useful.
In fact, nothing is useless in the world.

(106)

**कारणकार्यभावेन सम्बद्धमत्र हि सर्वम्
परमकारणमीशः सर्वभावाभिभावकः ॥**

कारण कार्य भाव से इस संसार में सब कुछ संबद्ध है। परम कारण ईश्वर है और वह ही सब कार्य (भावों) को भावित करने वाला है।

Every thing, in the world, is related through cause and effect relation. The Highest cause is God, who is Ultimate Fabricator of all.

(107)

सम्बन्धज्ञानं विज्ञानम्,
प्रयोगेण चमत्काराः ।
अन्ये ये के चमत्काराः ;
केवलं मायाजालकाः ॥

कारण कार्य के सम्बन्ध का ज्ञान ही विज्ञान है । उस सम्बन्ध के अनुसार प्रयोग अथवा व्यवहार ही चमत्कार है । ऐसे सम्बन्ध के ज्ञान के बिना जो चमत्कार हैं वे मात्र मिथ्या और भ्रामक हैं ।

The knowledge which pertains to the relation of cause and effect is scientific knowledge. The utilization of this knowledge in life is wonder. All wonders bereft of this relation are mere tricks and fallacies.

(108)

परिणाममनुमीय,
कर्मणि प्रवर्तन्ते ये ।
सफलं जीवनं तेषाम्;
आदर्शभूतं सर्वेषाम् ॥

परिणाम का अनुमान करके जो कर्म में प्रवृत्त होते हैं, उनका जीवन सफल और सभी के लिये आदर्शमय हो जाता है ।

Those who set into their adventures after thoroughly fore-seeing the result, they are successful in their life and they become ideal examples for others.

(109)

यद्यनुमानाकलनं समीचीनम्,
तर्हि तत्रोत्थानम् ।
यदि तत्र त्रुटिः तर्हि पदे पदे;
निराशा मृत्युश्च ॥

यदि अनुमान का आकलन ठीक रहता है तब उत्थान होता है ।
यदि अनुमान ज्ञान में त्रुटि रह जाये तो पद पद पर निराशा और मृत्यु
भी हो सकती है ।

If the inferential assessment is perfect, there is
success in life. If on the other hand, it is wrong there is
possibility of failure at every step of life and even there
can be death.

(110)

ईशार्चयानुमाननिर्णयो निश्चयेनार्थपरः ।
पूजयातः बुद्धेस्तर्कशक्तिर्नित्यं शुक्लीकर्तव्या ॥

ईश अर्चना से अनुमान का निर्णय निश्चित रूप से अर्थ परक हो जाता है । अतः पूजा द्वारा बुद्धि की विवेक और तर्क शक्ति को नित्य शुक्ल और शुक्लतर करते रहना चाहिये ।

The prayer helps and improves the faculty of inference to get at the right result. Hence, we should sharpen the faculty of inference and logic by regular prayer.

(111)

ईशार्चा कारणकार्यशृङ्खलया सह समनुगमयति ।
भक्त एवमीशशक्त्या सह तादात्म्यमेति सर्वस्वमाप्नोति ॥

ईश अर्चना, कारण और कार्य श्रृंखला के साथ ताल मेल बैठा देती है। और इस तरह से भक्त ईश-शक्ति के साथ एकीभाव प्राप्त करता हुआ सब कुछ प्राप्त कर लेता है।

By prayer, the devotee establishes a rapport with the series of cause and effect and thereby becoming one with the power of God, he gets whatever he likes in his life.

(112)

भजनेनाहंकारेऽनुशासिते ईशत्वमभिव्यक्तीभवति ।
ऐश्वर्यं सेवार्थं समायात्याप्तकामश्चैवं हि भक्तो भवति ॥

भजन द्वारा अहंकार के अनुशासित हो जाने पर ईशभाव अभिव्यक्त हो जाता है । ऐश्वर्य सेवार्थ उपस्थित हो जाते हैं और भक्त आस काम हो जाता है ।

When ego is disciplined by prayer, then God-hood reveals there. All divine luxuries appear there to serve the devotee and he is fulfilled with all his desires.

(113)

अहंभावः प्रवृत्तिमूलकः स्वरूपस्य च स विस्मारकः ।
छिन्ने मूले यथा पादपः स्वरूपं विस्मृत्य तथा मानवः ॥

अहंभाव सब प्रवृत्तियों का मूल है और इस प्रक्रिया से मानव को उसका स्वरूप विस्मृत करा देता है । जैसे मूल के कट जाने पर पेड़ की हालत होती है ऐसे ही स्वरूप के विस्मृत हो जाने पर मानव की हालत होती है ।

Ego is the primary agency of all types of inclinations towards world and thereby causes forgetfulness of the true nature of man. As root being cut off, the tree withers, so, on forgetting his true nature, man falls into miseries.

(114)

संसारपरमार्थयोर्यदि संतुलनम्,
तर्हि जीवनं स्वर्ग्यं सुस्वर्ग्यम् ।
अथ यद्यज्ञानवशात्तत्रासंतुलनम्;
तर्हि जीवनं नारकि कष्टम् ॥

यदि संसार और परमार्थ में संतुलन हो तो जीवन स्वर्ग और सुस्वर्ग्य है और अगर अज्ञान से वहाँ असंतुलन है तो मानव का जीवन नरकमय एवं कष्टकारक हो जाता है ।

If there is balance between the worldly matters and spiritual matters, the life is exalted to heavenly and even better than heavenly life but on the other hand, if there is an imbalance between these two because of ignorance then life is hell, even, lower than hell.

(115)

यादृशी रुचिर्हि संसारे तादृश्यपि चेत्यरमार्थे ।
संसारतो जीवनसिद्धिः परमार्थेनाप्यते मुक्तिः ॥

जैसी रुचि संसार में होती है अगर ऐसी रुचि परमार्थ में भी हो तो संसार से तो जीवन सिद्धि होती है और परमार्थ के साथ-साथ अनुसरण से मुक्ति भी प्राप्त होती है ।

As one is inclined to the world, if so, one be inclined to the spiritual matter; inclination to the world will fulfil the needs of life and his inclination towards spiritual matters, will set him on the path of liberation.

(116)

भक्तिभावेनाहंकारभावो यम्यः,
निमित्तभावेन कर्मचक्रस्य क्षयः ।
गुरोः सेवयाऽथाज्ञानभावोऽपनेयः;
ईशश्रद्धया चैव सुसम्भवास्त्रयः ॥

भक्ति भाव से अहंकार भाव को काबू करना चाहिये। निमित्त भाव (हम यन्त्र मात्र हैं) ऐसे कर्मचक्र को क्षीण करना चाहिये। गुरु की सेवा से अज्ञान भाव को हटाना चाहिये। और ईश श्रद्धा से इन तीनों की सिद्धि की सम्भावना सुनिश्चित करनी चाहिये।

The sense of ego be controlled through devotion towards God. We are just instrument, through this attitude we should undo the cycle of action, karman. Through devotion to preceptor, we should shun ignorance and through devotion towards God, we should make sure the accomplishment of all the above three.

(117)

अनहंकृतिः संस्मृतिरीशस्य,
अहैतुकी पूजा सन्निधिस्तस्य ।
सर्वत्रेशभावो दर्शनं तस्य;
अद्वैतता मुक्तिप्रसादस्तस्य ॥

अहंकार रहित भावना ही ईश की संस्मृति है। बिना किसी स्वार्थ कामना के की गई पूजा ही ईश की समीपता है। सर्वत्र ईश भावना ही ईश दर्शन है और अद्वैत भाव की सिद्धि ही मुक्ति का प्रसाद है।

The egoless state of mind, is, in fact, the continuous meditation of God. The prayer without begging a thing from God is closeness with Him. Feeling the presence of God in all beings and things is His revelation. And the maturity of the sense of non-duality is the very state of liberation.

(118)

लोकाद् भद्र! भयं तावद्,
यावद् द्वैतं प्रवर्तते ।
सिद्धे तु सर्वात्मभावे;
अभयं तस्य सर्वतः ॥

लोकसे, हे भला चाहने वाले ! तभी तक भय है जब तक द्वैत भावना है । जब सब में अद्वैत तत्त्व अर्थात् ईश दिखाई देने लगेगा तब ऐसे साधक को सबसे अभय प्राप्त हो जायेगा ।

O' well wisher! there is fear from the world till one is grounded in duality. The moment he happens to see the non-dual God in all things, his fear, thence, disappears on all sides.

(119)

ईश्वरो ज्ञानस्वरूपः,
सर्वभावात्मको हि सः ।
स स्वरूपं तेऽनुभव्यम्;
इति शास्त्रसम्प्रेरणा ॥

ईश्वर ज्ञान स्वरूप है और सभी सांसारिक वस्तुओं और जीवों के रूप में आभासमान है। वह ईश ही तेरा स्वरूप है, अतः उसका अनुभव करना चाहिये—ऐसी शास्त्र की सम्प्रेरणा है।

God is of the essential nature of Substantive knowledge. He also appears in the form of all beings and things. He (God) is your true nature and hence should be realized, is the injunction of the scriptures.

(120)

सर्वशास्त्राणि भद्र! सन्ति त्वत्कृते,
न त्वं तेषां क्रीडनकं खेलकं च ।
अनन्तस्वरूपप्रथनानि यानि;
तानि सेवितव्यानि नो इतराणि ॥

सारे शास्त्र, हे प्रिय, तेरे वास्ते हैं, तू उनका मात्र खेल खिलौना नहीं । जो शास्त्र, तेरे अनन्त स्वरूप का कथन अथवा प्रचार करते हैं, वे ही तेरे द्वारा सेव्य है, अन्य सेव्य नहीं हैं ।

All the scriptures, oh desirer of well-being! are for your sake. You are not their toy of amusement viz., play. Only those scriptures are to be adhered to by you, those preach that you belong to a principle which is limitless.

(121)

अहंभावो हि स्वरूपसंकोचकः,
भक्तिभावोऽथ स्वरूपप्रसादकः ।
नास्तिकताथ भक्तिभावहारिणी;
आस्तिकता भक्तिभावप्रसादिनी ॥

अहंभाव जीव के सर्वव्यापक स्वरूप को संकुचित करता है ।
भक्तिभाव पुनः स्वरूप को सम्पन्न कर देता है । नास्तिकता भक्तिभाव
को हर लेती है और आस्तिकता भक्ति भाव को देती है ।

The sense of ego imposes a feeling of confinement
on the actually pervasive nature of soul. The devotion
to God further establishes him in his true nature. The
non-faith deprives one of the devotion, and faith
establishes one again in devotion.

(122)

नास्तिकस्य कर्म बन्धकम्,
नास्तिकस्याथ नेशजपः ।
आस्तिकस्य तु कर्म यज्ञः ;
आस्तिको खल्वीशोपासकः ॥

नास्तिक के लिये कर्म बन्धन है और नास्तिक ईश जाप से भी वंचित है । आस्तिक (ईश का भक्त) होने के कारण ईश निमित्त कर्म करता है अतः उसका कर्म यज्ञ है और वह भक्ति भाव से नित्य प्रभु का उपासक है ।

The man of non-faith is bound by the chains of karman (action), and also is deprived of the meditation of God. But the one who has a faith, for Lord, karman (action) is the sacrifice for him (as he assumes himself as an instrument of God) and he perpetually is busy in meditation of God and hence is, in proximity of Lord.

(123)

ॐ क्रतो स्मर, कृतं स्मर ।

ॐ क्रतो स्मर, कृतं स्मर ।

-ईशोपनिषद्-16

हे संकल्पकर्ता जीव! तू ॐ (परमात्मा) का स्मरण कर और अपने कर्तव्य का पालन कर। दो बार कहने का अभिप्राय है- ये दोनों जीवन में अपरिहार्य हैं- इन दोनों के बिना न जीवन चैन से कटता है और न ही जीवन चलता है।

O' thoughtful being! meditate on the symbol-Om viz., God and perform your duty enjoined upon you. The repetition of sentence is for the purpose of showing their indispensable value in life. Neither life runs without them nor one can amuse without them.

(124)

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात्* ॥

- ऋग्वेद 3.62.10.

ईश्वर, ॐ प्रतीक से अभिव्यक्त किया गया है। वही सविता देव सबके द्वारा वरेण्य है, ध्येय है—उस तेजोमय देव का हम ध्यान करते हैं। वह हमारी धारणात्मक शक्तियों को प्रेरित करें।

Lord is denoted by the symbol Om. That life giver God-Savitri, the shining one is propitiabile by all. He may inspire all our sustaining and upholding faculties.

* (ॐ भूर्भुवः स्वः) इन व्याहृतियों समेत यह मन्त्र यजुर्वेद वाजसनेयिसंहिता में (36.3.) में है। इस मंत्र में ॐ भूर्भुवः स्वः— ये व्याहृतियां बताती हैं कि ईश्वर ही सभी लोकों के रूप में प्रत्यक्ष रूप से प्रकट है। सभी लोकों के प्राणदाता ईश का वरण एवं भजन करना चाहिए। वही हमारी सारी धारणात्मक शक्तियों को प्रेरित करे। आजकल इन व्याहृतियों समेत ही यह मंत्र भारतीय समाज में लोकप्रिय रूप से प्रचलित है। यह और अगला मन्त्र

(125)

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद् भद्रं तन्न आ सुव ॥

ऋग्वेद-5.82.5.

सविता देव सारी बुराईयों को हम से दूर कर देवें, जो हमारे लिये अच्छा है, उसे हमें दे देवें ।

Lord Savitri may take away bad elements from us and whatever is good for us, may bestow on us.

मिलकर '48 अक्षरी गायत्री' कहलाती है। साधकों द्वारा सिद्धियों की प्राप्ति में परम्परया इन दो मन्त्रों का बहुत महत्त्व बताया गया है। यजुर्वेद वाजसनेयिसंहिता में, ये दोनों मंत्र 30.2 एवं 30.3. में उपलब्ध हैं।

(126)

ॐ वात्याय च रेष्याय च,
वास्तव्याय च वास्तुपाय च,
शम्भवाय च मयोभवाय च,
शंकराय च मयस्कराय च,
शिवाय च शिवतराय च स्वाहा ॥

-यजुर्वेद 16.39,41 पाठभेदसमेतम्

प्राण वायु रूप, संकल्पविकल्परूप मन, शरीर रूप वास और शरीरवासी रूप, शम और आनन्द स्वरूप, शम एवं आनन्द कारक रूप, शिव एवं शिवतर स्वरूप प्रभु को, हम अपने आपको समर्पित करते हैं ।

Lord is in the form of vital breath, in the form of rising and falling thoughts viz., mind, in the form of dwelling as body, in the form of dweller in the body, as substantive peace and as substantive joy, and their giver, we offer ourselves to that Auspicious Lord and the One still beyond.

(127)

गुरुरूपाय गुरुमन्त्ररूपाय स्वाहा,
जगद्रूपाय जगदीश्वराय स्वाहा,
ऋद्धि-सिद्धि-प्रदायिन्यै च देव्यै स्वाहा,
सच्चिदानन्दात्मकाय ब्रह्मणे स्वाहा ॥

गुरुरूप और गुरुमन्त्र रूप भगवान को, जगद्रूप एवं जगदीश्वररूप को, ऋद्धि-सिद्धि प्रदात्री देवी को, और सच्चिदानन्दात्मक परम ब्रह्म को, हम अपने आप को समर्पित करते हैं।

We offer ourselves to Lord in the form of preceptor and in the form of incantation initiated to us by our preceptor. We offer ourselves to Lord who is visible as world and who is the Lord of the world. We offer ourselves to the goddess presiding over success and accomplishments of all type. We offer ourselves to Brahman the Existence-consciousness-Bliss.

(128)

भवाम्भोधिपोत भवभावरूप,
सच्चिदानन्द विभो अद्वैतस्वरूप ।
अध्यस्तं ममत्वेनावृतं प्रपञ्चेन,
पाहि मां तावल्लयस्त्वयि न यावद् ॥

प्रभो! आप भवसागर तथा भवसागर तारक, सच्चिदानन्द विभु अद्वैतस्वरूप हैं। अहंकार से अध्यस्त होने के कारण, मैं प्रपञ्च से घिरा हुआ हूँ। प्रभो! मुझे बचाते रहिए, जब तक कि मैं आप में लीन नहीं हो जाता।

Oh Lord, you are yourself the ocean of the world, you yourself are as the ship in the form of preceptor to cross over this worldly ocean. You are All pervasive, non-dual Existence-Consciousness-Bliss. I, being overcome by ego, am surrounded by multiformity. Please protect me till I merge in you to be one with you.

(129)

शिवानी मां सुस्वस्थं करोतु,
आधिव्याधिभ्यां रहितं तथा ।
ईशार्चा ददात्वासकामत्वम्;
सबलान्यङ्गप्रत्याङ्गानि मे ॥

शिवानी मुझे अपने में भलीभान्ति शरण दें, मुझे आधि व्याधि से रहित करे, मुझे ईश अर्चना तथा आसकाम बनाए, मेरे सारे अङ्ग प्रत्यङ्ग सबल हों ।

Goddess Shivani may give me refuge, may make me free from mental agonies and physical troubles, may bless me with Lord's prayer and fulfil all my desires. She may also make my primary and secondary organs fully operational.

(130)

त्रिगुणमयि त्रिगुणेश्वरि तारकेश्वरि च देवि,
सत्त्वेन प्रदेहि मातः! सर्वयोगसंवेशकत्वम्।
रजसा लोके ईशदृष्टिं त्वच्छंकरयोश्च सान्निध्यम्;
तामसेन तथा प्रगाढनिष्ठामभेदं च शाम्भवम्।।

त्रिगुणमयि, त्रिगुणेश्वरि तथा तारकेश्वरि देवी! सत्त्व गुण द्वारा मुझे सब योगों में प्रवेश करवायें, रजस् गुण द्वारा मुझे लोकों को ईश रूप में देखने की सामर्थ्य तथा अपना और शिव का सान्निध्य देवें तमस् गुण से प्रगाढनिष्ठा और शंकर भगवान् के साथ अभेदभाव प्रदान करे।

The Goddess, the assuager, The triplefold energy and the one commanding that energy, may give me etnry into all the systems of Yogas through sattva-guna; may give me the vision to see all the worlds as the form of Lord. And also proximity with Lord and hers through rajas-guna, may give me deep faith and identity with Shiva through tamas-guna.

(131)

शिवे! शैवं सर्वस्वं ददातु,
पारमार्थिकं चापि वर्चस्वम् ।
दिव्यां हि प्रीति-भक्तिं ददातु;
मलक्षालिनीश्चाश्रुनिर्झरीः ॥

शिवे! शिव सम्बन्धी सभी सर्वस्व तथा पारमार्थिक वर्चस्व मुझे देवें। मुझे दिव्य प्रेमा भक्ति का वरदान भी देवे ताकि अश्रुपूर्ण प्रेमनिर्झरी से मेरे सारे पाप धुल जायें।

Oh Consort of Shiva! give me all what belongs to Shiva and also spiritual luster over and above this world. Bestow on me the divine devotion of love and bless me the emotion-saturated streams of tears which may wash away my evil deeds.

(132)

वत्सले! स्ववत्साय खलु त्वदीयं तादात्म्यं प्रदेहि,
भगवति! भक्तवत्सले चिदानन्दे संविलयं च ।
वरदे! वैराग्यस्य ज्ञानस्य मोक्षस्य वरं प्रदेहि;
आनन्दे! आनन्दमानन्दमानन्दं सुतरां कुरुष्व ॥

वत्सले! अपने वत्स को अपना प्रेम भरा तादात्म्य दीजिए!
भगवति! भक्त वत्सल चिदानन्द शिव में मेरा विलय कर दीजिये
वरदे! वैराग्य, ज्ञान एवं मोक्ष का मुझे वरदान दीजिए। आनन्दे! मुझे
भलि भान्ति आनन्द आनन्द आनन्द से सम्पन्न कर दीजिए।

Oh fondling Mother! give your son, your loving
Oneness (identity) with you. Oh Goddess! You ensure
my merger with Shiva, the Existence-Consciousness-
Bills, the showerer of son-like love to his devotees. Oh
Boon-Showerer! bless me with detachment, knowledge
and liberation. Oh Blissful! equip me with happiness,
joy and bliss.

(133)

महामाये माङ्गल्ये मोक्षदे शिवायेशत्वदायिके ।
यथा ते मातः! मम क्रतवो मम चित्तमुपायाहि ॥

हे महामाये, माङ्गल्ये, मोक्षदे, शिव को भी ईशत्व प्रदान करने वाली, आप (सब सिद्धियों की दात्री) हैं। हे मात! मेरे सारे संकल्प एवं चेष्टाएं आपके अनुरूप हों और मेरा चित्त नित्य आप का स्मरण करे।

Oh Magnificent Creator Mother! Oh Auspicious one, You (bestower of all accomplishments) even give Lordship to Shiva. Oh Mother! let all my thoughts and actions be according to your wish and my mind be engrossed in your meditation ever.

(134)

चिदानन्दस्वरूपिणीम् ।
त्रिगुणभावभाविनीम् ॥
ततो हि चित्तिनाम्नीम् ।
सर्वब्रह्माण्डधारिणीम् ॥
भक्तयोगक्षेमपूरणीम् ।
सन्नमाम्यन्तर्यामिनीम् ॥

हे माँ! आप चिदानन्दस्वरूप हैं, आप त्रिगुणों की भावना करती हैं, ऐसे आप चित्ति नाम को धारण करती हैं, सब ब्रह्माण्डों को आप धारण करती हैं, भक्तों के योगक्षेम का वाहन करती हैं, आप अन्तर्यामिनी को मैं नमस्कार करता हूँ।

Oh Mother! You of the nature of Existence-Consciousness-Bliss; you the projector of three gunas; sattva, rajas and tamas; and thus known as citti; you the fabricator of all the worlds; you, the fulfiller of the unachieved and protector of the achieved ones, I bow to you, Oh Mother! as inner-controller of all and everyone.

(135)

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

भ.गी.18.61

ईश्वर सब भूतों के हृदय देश में, हे अर्जुन ! स्थित है । सभी भूतों को अपनी माया से यन्त्रवत् आरूढ़ किये हुये घुमा रहा है ।

Oh Arjuna! God is enshrined in everyone's heart. He projects all beings through his creating will (Maya) and sets them in their respective functions.

(136)

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

भ.गी.18.62

सम्पूर्ण भाव द्वारा उसी (ईश) की शरण में जा। उसके प्रसाद से परम शान्ति और शाश्वत स्थान को प्राप्त करोगे।

Hence, you go to his refuge with full faith. You will definitely be blessed by Him with supreme bliss and eternal position.

(137)

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥

भ.गी.18.63

हे अर्जुन ! तुझे यह गुह्य से गुह्यतर ज्ञान मेरे द्वारा कह दिया गया है । इस पर विचार विमर्श करके अब जैसा तू चाहे वैसा कर ।

O Arjuna, you have been explained the most secret knowledge by me. After meditating on it fully you do, whatever you wish.

(138)

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥

भ.गी.18.64

पुनः मेरे द्वारा कहे परमगुह्यतम शब्दों को सुनिए। तुम मुझे बहुत प्रिय हो, ऐसा, मैं दृढ़ता पूर्वक कहता हूँ, अतः तेरे हित की बात कहता हूँ।

You further hear from me the most secret words. As you are dearmost to me. Hence, I speak to you what is for your well-being.

(139)

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

भ.गी. 18.65

मेरे में मन वाला, मेरा भक्त, मेरा स्मरण ध्यान तथा मुझे नमन कर । तू मुझे निश्चित रूप से प्राप्त होगा, ऐसी मेरी प्रतिज्ञा है, तू मुझे प्रिय है ।

You concentrate your mind on me, be my devotee, meditate on me and pay your homage to me. You will certainly, get me, I promise to you as you are dear to me.

(140)

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

भ.गी.18.66

सारे धर्मों को त्याग कर, तू मात्र मेरी शरण में आ जा । मैं तुझे सभी प्रकार के पापों से बचाऊँगा । चिन्ता मत कर ।

Giving up all considerations for various duties/rites, you come completely to my refuge. I will save you from all agonies of sins. Be carefree.

(141)

रागस्तावज्जायते हि स्वभावात्,
मोक्षोपायो यत्नतः स्यान्न वा स्याद् ।
तासां त्वेकं तद् द्वयं लब्धमासीत्,
भाग्यं हि भाग्यं पाहि मां मारुतेश् ॥

-श्रीमन्नारायणीयम् 10.59.10

राग (प्रेम) स्वभावतः ही हो जाता है। मोक्ष का उपाय (ज्ञान वैराग्य) यत्न से सम्भव हों या न हों- ऐसा निश्चित नहीं। परन्तु उनको (गोपियों को) देखो, मात्र राग से (कृष्ण के साथ प्रेम से) उन्होंने (मोक्ष के साधक-ज्ञान, वैराग्य) दोनों ही को प्राप्त कर लिया। यह उनका अहोभाग्य था। हे मारुतेश (रामावतार कृष्ण) मेरी रक्षा करें।

Attachment viz., love is natural. The means of liberation (knowledge and detachment) may not be possible by efforts. But see the Gopis, they through their solitary love (with Krishna) could get both (knowledge and detachment). This is their great-luck. O' Lord of Hanuman! (Rama's incarnate; Krishna) save me.

(142)

इष्टरागाद् वैराग्यमन्यत्र,
वैराग्यादथ भवत्येकान्तम् ।
एकान्तेन भजनसातत्यम्,
गूढं तपो ह्यनन्तफलाय ॥

इष्ट राग से अन्यत्र वैराग्य हो जाता है। वैराग्य से एकान्त की रुचि बढ़ जाती है। एकान्त से भजन निरन्तर चलता है। और गूढ एकान्तिक तप अर्थात् ध्यान से अनन्त रूप भगवान्-फल की प्राप्ति होती है।

When you are engrossed in love of your desired one, you are detached elsewhere; the detachment leads to living in loneliness. Loneliness leads to continuous prayer. And lonely prayer results into the revelation of limitless fruit viz., God.

(143)

व्यवच्छेदकाहंकारेणारब्धो जीवबन्धः,
ईशस्मरणेन शनैः शनैर्भवति मोक्षः ।
ईश एवाथ संसार ईश एवाथ जीवः,
विश्वेशबद्धाहंकारतः तत्कालतो मोक्षः ॥

सीमा कारक अहंभाव के कारण जीव का बन्धन है। ईश के स्मरण से शनैः शनैः मोक्ष प्राप्त हो जाता है। ईश ही संसार है और ईश ही जीव है, ऐसे विचार के परिपक्व होने पर अहंकार, ईश एवं तद्रूप संसार से सम्बद्ध हो जाता है। और तत्काल मोक्ष प्राप्त होता है।

The bondage of soul (jiva) is because of the confinement caused by ego. By meditation on God, the soul slowly and slowly paves the way for liberation. 'God, Himself has become world, and God Himself has become soul'- this idea when matures, the ego gets related to the world and God. Resultantly, there is liberation.

(144)

बीजो यथाङ्कुरीभूय पादपायते वृक्षायते पुष्पायते पुनर्बीजायते ।
एवं ब्रह्म जगतीयति जीवायते ऋषीयते देवायते पुनर्ब्रह्मायते ॥

बीज जैसे अङ्कुरित होकर पौधा बनता है, वृक्ष बनता है, पुष्पित होता है और फिर पुनः बीज बनता है, ऐसे ही ब्रह्म जगत् बनता है, जीव बनता है, ऋषि बनता है, देवता बनता है और पुनः ब्रह्मभाव पर आरूढ़ हो जाता है ।

As seed sprouts, becomes plant, grows into tree, flowers and then matures into seed, likewise, Brahman becomes world, then jiva (soul), then seer, then divine being and thereafter gets again restored to the nature of Brahmanhood.

(145)

पूर्णोऽपीश्वरो वारं वारं संसारमवरुह्य,
पुनरपि वारं वारं परमार्थमारोहति ।
गतिर्हि सिसृक्षाशक्तिरीशस्तया जगत्प्रष्टा,
त्वय्यन्तःस्फुरणा सा ते *योगक्षेमायोत्थानाय ॥

पूर्ण परमेश्वर बार-बार संसार रूप से अवरोहण कर पुनः बार-बार परमार्थ में आरोहण करता रहता है। गति ही रचना करने की इच्छाशक्ति है। ईश, इसी से जगत्प्रष्टा है। तुझमें यह शक्ति तेरे योगक्षेम तथा उत्थान हेतु अन्तः स्फुरणा है।

God is complete in Himself, but, in spite of that He time and again descends to the form of world and again and again ascends to transcendental state. The very movement is the will to create. God, with the help of this agency has become world. That energy, in you, is, in the form of fervour to do some thing or the other for your well-being and upliftment

* अप्राप्त को प्राप्त करने का उपाय और प्रयत्न योग और प्राप्त हुए की रक्षा का उपाय और प्रयास क्षेम कहलाता है।

(146)

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दन्ति मानवः ॥

भ.गी. 18.46.

जहां से जीवों (भूतों) की उत्पत्ति होती है और जिससे यह सभी कुछ दिखाई देने वाला प्रकट होता है । उस (परमाधार) को अपने कर्म से पूज कर, हे मानव, तू सिद्धि प्राप्त कर सकता है ।

Where from all beings are born, by whom every thing is caused to be, you can worship Him through your inborn karman and can get full accomplishment.

(147)

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥

भ.गी. 18.47.

अपना विगुण (निम्न) धर्म अर्थात् कर्म भी दूसरे के भली प्रकार से परिपालित धर्म से श्रेष्ठ है। अपने स्वभावानुरूप कर्म को करता हुआ तू किसी पाप (अवज्ञा) को प्राप्त नहीं होगा (अपितु ऐसा करने से तेरी ग्रन्थी खुलती है और उत्थान होता है)।

It is better to adhere to one's own duty though degraded rather than to perform efficiently the duty of others. The duty done by you in accordance to your inner impulse does not enjoin upon you any blemish (rather, it upgrades you in the long run).

(148)

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥

भ.गी. 18.48.

हे कौन्तेय । दोष पूर्ण भी कर्म सहज होने की स्थिति में त्यागना नहीं चाहिये । वस्तुतः (गहराई से देखने पर) कोई भी कर्म दोष रहित नहीं जैसे अग्नि धूएं दोष से रहित नहीं होता ।

The inborn duty (karman) even if, be full of faults, should not be shun. As all actions are related to some defect or the other as fire is accompanied by smoke.

(149)

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥

भ.गी. 18.40.

न पृथ्वी पर न द्युलोक में न देवताओं में, कोई ऐसा जीव (सत्त्व) है जो प्रकृति से उत्पन्न इन तीन गुणों से छूट पाया हो।

There is none on the earth, nor anyone amongst gods in the heaven, who may be free from the three fold 'gunas' of nature.

(150)

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥

भ.गी.3.27.

प्रकृति के इन तीन गुणों द्वारा हर प्रकार के कर्म किये जा रहे हैं अहंकार से विमूढ़ जीवात्मा मानता है कि वह कर्म कर रहा है ।

All types of actions (deeds) are being performed by the three fold gunas of nature. But being deluded by ego, the soul admits that he does.

(151)

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥

भ.गी.3.33.

ज्ञानवान् भी स्वप्रकृति सदृश ही (प्रकृति ने जो स्वभाव उसे दिया है) चेष्टा करता है । सारे भूत प्राणी प्रकृति के अनुरूप चेष्टा कर रहे हैं । उनका निग्रह (प्रकृति की महान् शक्ति के समक्ष) क्या रूक पायेगा ।

Even, a person equipped with knowledge will act as per his personal nature (nature, as, has been bestowed on him). All being and creatures abide by nature. Who can disobey the dictates of nature?

(152)

न रागो न चैव त्यागोऽत्र सुप्रिय! कस्यचित्स्वाधीनौ,
प्रकृतौ तौ पूर्वनियोजितौ सर्वेषां योगक्षेमाय ।
प्रवृत्तिनिवृत्त्योःपौनःपुन्यं रागत्यागयोः समत्वम्;
जगन्नाथस्यानुसारि सर्वं यो न तल्लीनो न तद्धीनः ॥

न राग और न ही त्याग, हे सुप्रिय! किसी के स्वाधीन है। ये दोनों प्रकृति में सभी के योगक्षेम हेतु पूर्व नियोजित है। प्रवृत्ति निवृत्ति में पुनःपुनः आवृत्ति और राग त्याग में समभाव-यह सब जगन्नाथ के अनुसार चलने वाला चक्र है-जगन्नाथ न किसी वस्तु अथवा कार्य में लीन होता है न ही उससे हीन ही होता है। (उसका व्यवहार समभाव का है)

O Darling, the attachment and detachment are not in control of anyone. They are already inherent in nature for the well-being of everyone. The continuous cycle of inclination and declination, and equanimity towards attachment and detachment are the way of working of Lord who neither is stuck up anywhere nor without world.

(153)

अहंकारेण शक्तिर्नियोजयति निश्चितलक्ष्ये,
अनहंकारेण ततः पुनः निवर्तयति हि सा ।
प्रवृत्तिनिवृत्तिद्वयमप्यथ प्रकृतेरधीनम्;
मातरं सेवमानेभ्यः द्वे अपि सम्मानयोग्ये ॥

अहंकार द्वारा प्रकृति प्रत्येक को निश्चित लक्ष्य में नियोजित करती है और निरहंकार द्वारा उसे पुनः वहाँ से निवृत्त करती है। प्रवृत्ति निवृत्ति वस्तुतः दोनों प्रकृति के अधीन है। माता प्रकृति के मार्ग का सेवक प्रवृत्ति निवृत्ति दोनों में समान आदर भाव रखता है।

Through ego, nature, propels one in a particular target and again by undoing his ego, she withdraws, him therefrom. The inclination and withdrawal, both are in the control of nature. Those who are devoted to Mother Goddess, for them, the ways of inclination and withdrawal, both are equally regardable.

(154)

वारं वारं भद्र! कृते अपि यत्ने,
यदि कश्चिन्न हि शुश्रूषते शास्त्रम् ।
तर्हि स विशेषतः प्रकृतिबद्धः ;
प्रकृतिस्तेन किञ्चिच्च चिकारयिषति ॥

अरे भला चाहने वाले! बार बार यत्न करने पर भी यदि कोई शास्त्र को नहीं सुनना चाहता है तो समझिए कि वह प्रकृति द्वारा विशेष रूप से बद्ध है; प्रकृति उसके द्वारा कोई विशेष काम करवाना चाहती है।

Oh wisher of well-being! if trying again and again, one does not like to listen to scriptural guidance, he is surely in the strong clutches of nature. Nature wants to get some thing special done from him.

(155)

प्रकृत्या सह सामञ्जस्येन,
प्रकृतेरनुरूपचेष्टया ।
मातुः शुश्रूषा चर्या सेवैव;
भक्तिः मुक्तिः ऋद्धिः तथा सिद्धिः ॥

प्रकृति के साथ सामञ्जस्य द्वारा तथा प्रकृति के अनुरूप चेष्टा करते रहना ही प्रकृति माता की आज्ञा पालन है, सेवा और चर्या है । यही भक्ति, मुक्ति, ऋद्धि तथा सिद्धि है ।

When you establish rapport with nature and when your activities are in accordance to nature, this is called the obedience, acting and service to nature and this very, in fact, is, the devotion, liberation, success and accomplishment.

(156)

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥

भ.गी. 18. 17.

जिसे न अहंकार भाव है और जिसकी बुद्धि लिप्त नहीं होती, उससे यदि सभी लोकों का भी संहार हो जाये तो समझिए न उसने किसी को मारा है और न ही वह बद्ध होता है (क्या कभी फांसी देने वाला कातिल कहलाता है) ।

Who is free from the feeling of ego and whose mind does not involve anywhere, even if whole world is killed by him, neither he kills nor he is involved (as who puts gallows around the neck of a convict is not the killer).

(157)

यत्करोषि यदश्रासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥
शुभाशुभफलैरेव मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥

भ.गी.9.27-28.

तू जो करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान करता, जो तप करता है, हे कौन्तेय! उस सब को तू मुझे अर्पित कर दे। ऐसे तू शुभाशुभ कर्मफल बन्धनों से मुक्त हो जायेगा। जो इस प्रकार के सन्न्यास योग से युक्त होता है वह जीवात्मा मुक्त होकर मुझ को ही प्राप्त होता है।

Whatever you do, whatever you eat, whatever you offer, whatever you give as alms, and whatever penance you perform, you entrust all of them to me. This way, you will be free from the wrong or right consequences ensuing from them. The way of this total entrusting, will free you, and you will merge with me.

(158)

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तज्योतिरेव च ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥

भ.गी.5.24.

जो अन्तः सुख वाला है, अन्तः आनन्द वाला तथा अन्तः ज्योति वाला पुरुष है (अर्थात् बाह्य वस्तुओं की बजाये ईश में अधिक लीन रहता है) वह योगी ब्रह्म निर्वाण अर्थात् ब्रह्म से अभिन्नता अनुभव करता हुआ ब्रह्म में ही लीन होता है ।

He who rejoices internally, who amuses internally and who is guided by the internal light, such aspiring yogin identified with Brahman is lead to the merger with Brahman.

(159)

ईशः सर्वेषु सर्वस्वं स्वयमेव जीवजगद्भूतः ।
यत्र यत्र यद् यदिच्छति क्रतुना कर्मणा तत्तत्सः ॥

ईश सब में, उनका सर्वस्व है। वह स्वयं ही जीव और जगत् बना हुआ है। जहाँ जहाँ वह, जो जो चाहता है, वहाँ वहाँ, संकल्प एवं कर्म के द्वारा वह, वह बन जाता।

Lord is all in all, in all, He Himself is soul as well as the world. Whatever, He wants to be where, there He becomes that through His will and deed.

(160)

गुरुर्भूत्वा स मार्गदर्शकः शिष्यभावेनोपदेशानुगः ।
यत्र जीवः परिमार्जयन् स्वं स तत ईशः स पुनर्ब्रह्म ॥

गुरु बन कर वह उपदेश देता है और पुनः शिष्य बन कर उस उपदेश का अनुसरण करता है । जहाँ जीव है, उपदेशानुसार परिमार्जन करता हुआ वह पुनः ईश एवं सर्वव्यापक ब्रह्म हो जाता है ।

Becoming preceptor, he guides and again becoming disciple he follows the guidance. He thus purifies himself as soul and subsequently, becomes Lord viz., the Pervasive Brahman.

(161)

संसाररूपं ते बृहद् देवशास्त्रम् ।
समस्यासमाधानमतोऽत्र ग्राह्यम् ।
देव एवाथास्माभिरत्रानुसृत्यः ;
युक्तो ह्यपि सृष्टौ यस्तया न हार्यः ॥

हे साधक! यह संसार तेरे लिये बहुत बड़ा देवशास्त्र है। तुझे अपनी सारी समस्याओं का समाधान यही खोजना चाहिये। संसार में रहते हुये हमें ईश के नक्शे कदमों पर चलना चाहिये। देखिए! ईश नित्य सृष्टि कार्य में तत्पर भी रहता है परन्तु फिर भी कभी भी उसमें लीन नहीं रहता (लीन रहता तो भूतकाल की रची गई अत्यन्त सुन्दर कृतियों में रमा रहता, वे तो फिर नष्ट ही न होती-इससे स्पष्ट है वह उनमें लीन अथवा अनुरक्त नहीं है)।

Oh Aspirant, the world is the great divine scripture for you. You must find solution of your all problems here. You should follow suit, the Lord in this world. See! He is always busy in creation but still not stuck any where there (old things change and He replace them by newer ones).

(162)

यत उदभूतस्तदनुसारी भव,
यदि योगक्षेमं हे तात! वाञ्छसि ।
पितुरनुसरणं पितृपूजनम्;
जगन्नाथो न तल्लीनो न तद्धीनः ॥

तू जिस परम सत्ता से उद्भूत है उसी का अनुसरण कर यदि हे प्रिय! तुझे योगक्षेम की प्राप्ति करनी है तो पिता (ईश) का अनुसरण करना ही उसकी पूजा है। देख! जगन्नाथ जगत् से न कभी रहित है और न ही उसमें लीन ही है। तुझे भी कर्तव्य में नित्य निष्ठ होना चाहिये परन्तु उसमें लीन अर्थात् फलोन्मुखी नहीं होना चाहिये।

You should follow the Lord who is thy creator, if, oh dear! You want the summum bonum, Lord's prayer is, in fact, to follow him suit. See! He creates still He is not stuck anywhere.

(163)

जगत्कुर्वाणो यथा जगन्नाथः,
न तत्र लीनो न च तेन हीनः ।
तथा त्वं न कृते अनुरक्तस्स्याः ;
न कर्तव्ये अथ विरक्तस्तथा ॥

जगन्नाथ जैसे जगत् रचना करते हुये न तो वहाँ अनुरक्त रहता है और न ही जगत् से हीन होता है, ऐसे ही जो काम तू कर चुका है उसमें अनुरक्त न रह और जो कर्तव्य किया जाना है उसके प्रति तू विरक्त न हो ।

As Lord creating the world neither remains stuck up there, nor is without the activity of creation, likewise neither you remain engrossed what you have already done nor you be lethargic what you are still to do.

(164)

मोक्षो नाकर्मिणां धाम,
मोक्षो नैव चाक्रियात्वम् ।
मोक्षो न शून्यसमाधिः ;
समत्वं चेन्न जीवने ॥

मोक्ष न तो निकम्मे लोगों का धाम है और न ही अकर्मण्यता है । मोक्ष शून्य समाधि भी नहीं है यदि जीवन में आप समभाव के दृष्टिकोण को चरितार्थ नहीं कर पाये हो ।

Liberation is neither the place of inactive people nor it is immobility. Liberation is also not even the tranquil immobility of meditation, if you could not acquire the behavior of equanimity in life.

(165)

शून्यसमाधिं विहाय,
ईशः संसारे प्रवृत्तः ।
जगत्कारिणं विरुध्य;
जगन्निरोधोऽसम्भवः ॥

शून्य समाधि को छोड़ कर ईश संसार में प्रवृत्त है । जगत् के कारण (भगवान्) का विरोध करके, कौन जगत् का निरोध कर सकता है ।

Lord appears as world after shunning utter tranquillity. Who opposing Lord, can nullify the world.

(166)

यथार्थं शास्त्रैर्विज्ञाय,
वारं वारं चानुचिन्त्य ।
ईशजनीभूयाचरेत्;
जगत्कारिणे स्वकर्म ॥

शास्त्रों से यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके और बार बार अनुचिन्तन मनन करते हुये, ईश का ही जन अर्थात् सेवक बनकर जगत्कर्ता के लिये अपना कर्म करता रहे ।

After having known the true knowledge from scriptures, and time and again meditating and pondering over there, be the servant of God and perform your duty to serve Him.

(167)

ज्ञान्यज्ञानिनावुभावपि संसारे
स्वस्मिन् स्वस्मिन् कर्मणि नित्यं संलग्नौ ।
कर्माज्ञानिनो बन्धायाहंभावत्वात्;
ज्ञानिनो मोक्षाय निमित्तभावत्वात् ॥

ज्ञानी तथा अज्ञानी दोनों ही संसार में अपने अपने कार्य में नित्यं लगे रहते हैं। अज्ञानी का कर्म बन्धन का हेतु बनता है, अहंकार के कारण। ज्ञानी का कर्म मोक्ष का कारण बनता है निमित्तभाव रख कर काम करने के कारण।

Enlightened and ignorant both are ever busy in their work. The karman (action) of ignorant binds him because of ego and the karman of enlightened one, frees him because of performing it as an instrument of God.

(168)

ईशकृपयाथोत्थितजिज्ञासायाम्,
गुरुणा शास्त्रैश्च गुह्यं हि ज्ञेयं यत् ।
सत्यसंकल्प ईशो हि सर्वान्तःस्थः ;
श्रद्धापयति यथाथ भावयति ॥

ईश की कृपा से जिज्ञासा के जाग जाने पर गुरु द्वारा और शास्त्रों द्वारा यह गुह्यज्ञान जानना चाहिए कि सत्यसंकल्पवान् ईश सब के अन्दर स्थित है। जैसी जैसी श्रद्धा करवाता है वैसा वैसा वह बना देता है।

By Lord's gift of aspiration to know, one should know from the preceptor and from scriptures, the deeper mysterious Truth: that the Lord, capable of materializing whatever, He wishes, is enshrined in everyone's heart. As He directs the conviction (of aspirant) so He makes him.

(169)

ज्ञानभावेनाथेशरूपं जगत्,
अहंकारेण तत्परीक्षास्थलम् ।
तर्कबुद्ध्या तच्चास्ति कार्यशाला;
श्रद्धया जगदनुग्रहस्थानम् ॥

ज्ञानभाव से जगत् ईश का रूप है, अहंकार भाव से जगत् परीक्षा स्थल है, तर्क बुद्धि के कारण जगत् कार्यशाला है और श्रद्धा बुद्धि के कारण जगत् ईश का अनुग्रह स्थान है ।

Because of point of knowledge, world is the form of God, by the attitude of ego, it is a testing place, by rational approach, it is the workshop and because of the attitude of faith world is the place of grace of God.

(170)

भेदभाविने जगद् दुःखदम्,
समदर्शिने तत्क्षेमकरम् ।
सर्वसमस्यासमाधानाय;
सर्वत्रेशभावनं समर्थम् ॥

भेदभावक के लिये जगत् दुःखरूप है, समभावदर्शी के लिये जगत् योगक्षेम कारक है। सारी समस्याओं के समाधान हेतु सर्वत्र ईश भाव रखना-सफलता के लिए समर्थवान् है।

The world is full of miseries for those who believe in differences; for the one who believes in equanimity, the world is an accomplishing place. The attitude of seeing Lord in all forms, is extremely potential for all his wellbeing.

(171)

नित्यं भजनपरोभव,
नित्यं कर्तव्यपरायणः ।
जीवने सवत्रेशभावः;
प्राणा इव सहजा भूयाः ॥

नित्य भजन परक बनो, नित्य कर्तव्य परायण रहो, जीवन में सर्वत्र ईशभाव रखो-इन तीनों को अपने जीवन में प्राणों के समान सहज बना लो ।

Be ever inclined to prayer, be ever inclined to duty and always look world as the form of God. Make all these three as spontaneous in your life as your vital breath.

(172)

सहजकर्मणश्चर्या,
जीवने तथेशभक्तिः ।
सर्वत्र चाप्येशभावः ;
मोक्ष एष चमत्कारः ॥

सहज कर्म की चर्या, जीवन में ईश भक्ति एवं सर्वत्र ईश की भावना ही मोक्ष एवं चमत्कार है ।

The routine of inborn duty, the devotion towards Lord in life, and looking the world as form of Lord, all these three, are, in fact, liberation and charisma.

(173)

सर्वत्रेशभावस्य ह्यथाभ्यासी भव,
पीतरक्तकृष्णीभूयेशं मान्वेषय ।
नटेश्वरो यदि प्रत्यक्षतो हि स्थितः;
किमर्थं तर्हि त्वं तस्यान्वेषीतस्ततः ॥

सर्वत्र ईशभाव के कर्मठ अभ्यासी बन जाओ । पीत रक्त कृष्ण वस्त्र पहन कर या कठोर तपस्वी बनकर ईश्वर को मत खोजो, नटेश्वर यदि प्रत्यक्ष ही गोचर हो रहा है तो उसे इधर उधर खोजने की क्या जरूरत है ।

Being arduous practiser you must see God as personified in all forms of nature. There is no need to search for God by renunciation, becoming over sensitive or over emotional and by adopting austere practices. Why to adopt such measures when He is apparent before us as world.

(174)

लोकस्य स्वभाव एव यत्पार्श्वस्थं गृहदेवं तु स नाद्रियते ।
परं दूरं वनं गत्वा नागमृदालयमायासेन पूजयते ॥

लोक का यह स्वभाव रहा है कि पास टिके गृहदेव का तो वह आदर नहीं करता परम दूर वन में जाकर नाग के घर- मिट्टी से बनी बांम्बी को- बड़े आयास और यत्न से पूजता है ।

It has been the nature of people that they disregard the home-deity and they worship the ant-hill, the home of cobra with great effort and trouble after going to the forest.

(175)

ईशं सर्वव्यापकं शृणुषे मन्यसे च,
ततः कथं कुत्रचिद्रागः कुत्रचिद् द्वेषः ।
एवं कृत्वा भजनेन यदर्जितं पुण्यम्;
ततोऽप्यधिकं व्यवहारेऽर्जितं पापम् ॥

ईश को तो सर्वव्याप सुनते आये हो, और मानते भी हो। तो बताओ! तब क्यों? तुम कहीं राग और कहीं द्वेष करते हो। ऐसा करते हुये भजन द्वारा जितना तुम अर्जित करते हो उससे कहीं अधिक तो व्यावहारिक जीवन में तुम पाप कर डालते हो (क्योंकि पूजा की बजाये तुम्हारा व्यवहार में अधिक समय बीतता है)।

You hear (from your parents as well as from the scriptures) that God is all pervasive, why then you are favourable with one and inimical to others. By doing so, what you earn during your prayer, much more than that you waste in your day-to-day life (as your routine life is longer than prayer-period)

(176)

भजने यं पूजयसि व्यवहारे तमपशब्दयसि,
कीदृशः प्रमाद एष यज्जानन्नपि त्वं विस्मरसि ।
स्वयमेवाधुना वद कियत्पुण्यं कृतं कियत्पापम्;
स्मरन् चिन्तयन्नेवं दिनमेकं समभावे स्थास्यसि ॥

जिसको तू भजन में पूजता है, व्यवहार में तू उसे गाली देता है । यह कैसी कैसी गलतियां तू करता है- जानते हुये भी पता नहीं व्यवहार में तू क्यों गलतियां करता है । अब तू ही बता कि कितना तू ने पुण्य किया है और कितना पाप । जब तू ऐसा याद करने लगेगा और इस तरह से व्यवहार में भी सचेत हो जायेगा तो तू एक दिन समभाव में स्थित हो जायेगा ।

Whom you pray during worship, him you abuse during your routine life, what a blunder you commit. You yourself tell how much virtuous you have done and how much evil you have committed. When you reflect and meditate upon such thing, you will be able one day, to live a behaviour of equanimity.

(177)

पूजायां व्यवहारे द्वयोः संतुलनं स्थापय,
पूजायां यं ध्यायसि व्यवहारेऽपि तं पश्य ।
पूजाव्यवहारयोः संतुलनं यदा यास्यसि;
तदा प्रच्छन्नं नटवरं त्वं समक्षं द्रक्ष्यसि ॥

तुझे पूजा में और व्यवहार में संतुलन स्थापित करना होगा । पूजा में जिसका ध्यान करते हो उसे व्यवहार में भी देखना होगा । पूजा और व्यवहार में जब संतुलन स्थापित हो जायेगा तब अत्यन्त प्रच्छन्न (छिपे हुये) नटवरलाल (जगद् रचना के खिलाड़ी) ईश्वर को तू प्रत्यक्ष देख पायेगा ।

You have to establish a balance between prayer and day-to-day life. Whom you pray during prayer, you have to see Him when you deal with people in your daily life. When you will be able to establish such a balance between prayer and day-to-day-life, you will be able to see directly, the projector of the world, the one busy, in the sport of the world.

(178)

ज्ञानेन्द्रियैस्त्वं स्थूलानि पश्यसि,
अन्तःकरणैश्च सूक्ष्माणि यानि ।
अभ्यासप्राप्तप्रज्ञानेत्रैर्भद्र !
प्रभूतं प्रच्छन्न देवं पश्यसि ॥

ज्ञान इन्द्रियों द्वारा तुम स्थूल (मोटी) चीजे देखते हो, अन्तःकरण से अत्यन्त सूक्ष्म चीजें देख सकते हो । ईश्वर नाम का नित्य अभ्यास करते रहने से साधक ऐसे प्रज्ञा नेत्र प्राप्त कर लेता है जिससे नाम रूपों में अत्यन्त गूढ़ रूप से छुपे हुये और सबसे सूक्ष्मतम तत्त्व-परमेश्वर को भी देख पाता है ।

You can see from your senses the gross things but you can see through your mind viz., internal organs of knowledge, the very subtle things. But when you meditate upon God's name daily, you get such a supernatural eye by which you can see most subtle principle viz., God hidden behind the curtain of name and form.

(179)

मयि स त्वयि स शत्रौ स मित्रे च सः,
दूरे स चान्तिके स इह सोऽमुत्र च सः ।
सर्वस्मिन्प्रपञ्चे स यदैवं प्रकाशते;
जातमृतस्तल्लीनः स एको लीलायते ॥

वह (सर्वव्यापक अजर अमर तत्त्व) मुझ में भी है, तुझ में भी है, शत्रु में भी है, मित्र में भी है; वही तत्त्व दूर भी है नजदीक भी है, इस संसार में भी है परलोक में भी है। सारे जगत्प्रपंच में जब ऐसा प्रतीत होने लगता है अर्थात् इस तत्त्व की प्रकाशात्मकता प्रत्यक्ष अनुभव होने लगती है तब जीने मरने वाला उसी में लीन हो जाता है और मात्र वही तत्त्व सर्वत्र संसार में लीला धारण करे हुये दिखाई देने लगता है।

That Eternal Principle is in me and thee, in friend and foe, He is present near and away, in this world and in other world. He, when is realized in the whole apparent world, then the one undergoing birth and death, disappears viz., merges with him. Only, He, then is realized as busy in the sport of creation.

(180)

जीवने शतशः सहस्रशः सायं प्रातर्गतागते,
यदि तत्र ते हि ममत्वं तर्हि तथावद् भविष्यसि ।
बाल्ये यौवने वार्धक्ये देहनाशे त्वमेकोऽविकार्यः ;
परिवर्तनेषु सच्चिदानन्दस्त्वं तथाऽसि तथा स्याः ॥

इस जीवन में सैकड़ों और हजारों सायं और प्रातः बीत गये हैं । यदि तुम्हारा ममत्व वहां है तो तुम वैसे ही हो जाओगे । वस्तुतः बाल्य, यौवन, वार्धक्य और देहनाश रूप परिवर्तनों में केवल तुम अविकार्य तत्त्व हो । परिवर्तनों के मध्य तुम सत्-चित् आनन्द स्वरूप हो और वैसी नित्य स्मृति तुम्हारी बनी भी रहनी चाहिये ।

In life, so many rises and falls, you have seen. If you get engrossed therein viz., attached there with, you will become like them. You must know that you, in fact, are changeless eternal, principle beyond the changing states of childhood, young age, old age and decay of body. You, in fact, are Eternal-Existence-Consciousness-Bliss amongst changes. You are that, remain firm in the memory of this fact.

(181)

सच्चिदानन्तं परमकारणम्,
अहंकारस्तत्र निमित्तं कार्यम् ।
सच्चिदानन्तः तु सर्वेशो ज्ञेयः ;
यथा स्थानमथाहंकारो नेयः ॥

सच्चिदानन्त परम कारण है और अहंकार निमित्त कार्य है ।
सच्चिदानन्त को सर्वेश जानना चाहिए और अहंकार को उसके
यथोचित स्थान पर ले जाना चाहिए ।

Existence-Consciousness-Bliss is the final cause,
ego thereof is only an effect and instrument. Existence-
Consciousness-Bliss is Lord and ego, therefore, should
be taken to its befitting place.

(182)

अहंकारो व्यवहाराय,
सर्वैः सह सम्बन्धाय च ।
ईशः सर्वरूपको ज्ञेयः ;
क्वचित्तस्योपेक्षा हानाय ॥

अहंकार व्यवहार के लिए है और सबके साथ सम्बन्ध बनाने के लिए है । ईश सब रूपों में स्वयं प्रकट है, कहीं भी उसकी उपेक्षा हानिकारक होती है ।

Ego is for mutual behaviour and for contact with others. Know that, Lord Himself has assumed all forms. Neglect of this fact is for great loss.

(183)

जगन्नाथो हि नित्यं स्मार्यः सृष्टौ तस्य व्यवहारश्च ।
कुर्वाणोऽपि जगत्पश्य तात! यो न तल्लीनो न तद्धीनः ॥

जगन्नाथ का नित्य स्मरण करना चाहिए, और सृष्टि में उसके व्यवहार को भली भाँति जानना चाहिए। देखिए! वह जगत् की रचना करते हुए भी न वह उसमें कभी लीन होता है और न ही उससे हीन होता है।

Lord must be thought over always and also His way of working in creation. See! He is neither stuck up anywhere nor passive in creation.

(184)

केन प्रेरितोऽहमहंकारी भवेयम्,
रचनाकाराय न मे एवं रोचते ।
अहं कृतवान् नेशो कदापि भाषते;
संसारपृष्ठतोऽनहंभावाय च सः ॥

किस की अभिप्रेरणा से मैं अहंकारी बनूं, मेरे रचनाकार को तो यह अच्छा ही नहीं लगता। जब से उसने संसार रचा है किसी को नहीं कहता कि मैंने संसार रचा है। संसार के नाम रूपात्मक पर्दे के पीछे रह कर सबको अहंभाव से रहित होने की प्रेरणा देता है।

By whose instigation, I may be egoist, my creator never likes it. He, after having created the whole universe, never claims that He created it. He always remaining hidden behind the curtain of name and form of the universe, inspires us also to be egoless.

(185)

केनेरितोऽतोऽहमहंमन्यो भवेयम्,
यो रचितवानस्मान् न तस्मै रोचते ।
विनम्रभावेन केवलमापनीयः ;
न स्तुतिमपेक्षते न शृङ्गारं तथा ॥

अतः, मैं किससे ईरित होकर किस की शैह पर, संकेत पर, अहम्मन्य (अहंकारी) होऊँ, अहंकार करूँ। जिसने हम सब को रचा है उसे तो यह पसंद ही नहीं। जिस किसी ने भी उसको पाया है, विनम्र होकर ही पाया है। वह न तो स्तुतियों की अपेक्षा रखता है और न ही सजावटों और शृंगारों की।

At whose behest I may be egoist. He, who has created us, never likes it. He is only attainable by humble attitude. He neither desires propitious eulogies nor decorational embellishments.

(186)

अहंकारानुरूपं यदि ह्यत्र सर्वम्,
अहंकारस्तर्हि पुष्यत्येव पुष्यति ।
प्रतिरोधेन भूयो विनम्रो जायते;
भक्तेभ्योऽत इहेशो विषमोभवति ॥

यदि यहाँ संसार में सब कुछ अहंकार के मुताबिक चलता रहे तो अहंकार की दिनों दिन वृद्धि होती जाती है। यदि उसकी रुचि के विरुद्ध कुछ होता है तो ऐसे टकराव से उसकी नाक झुकती है अर्थात् वह विनम्र होता है। यही कारण है कि अपने भक्तों के लिये भगवान् इस संसार में विषम परिस्थितियाँ बनाता रहता है ताकि वे विनम्रता के मार्ग पर अग्रसर हों।

If everything goes in accordance to ego, ego is most likely to be stronger. If on the other hand, it has to face resistance, it remains moderate or rather humble. God, creates uneven circumstance for his devotees so that they may be humble.

(187)

संसारो न निन्द्यः कदापि संसारो ह्यस्मत्पाठशाला,
सर्वं यद् ज्ञायते अस्माभिः सर्वं तत्संसारसम्भवम् ।
संसारस्सर्वोत्थानश्रेणी संसारो मोक्षस्य च हेतुः ;
योगक्षेमायाथ ते भद्र! ईश एव संसारो भूतः ॥

हमें संसार की कभी निन्दा नहीं करनी चाहिये, संसार तो हमारे लिये पाठशाला है। जो कुछ भी हमें ज्ञात होता है वह सब संसार से ही सम्भव है। संसार सबके उत्थान की सीढ़ी है। संसार ही हमारे मोक्ष का भी कारण बनता है। अरे भई! हमारे योगक्षेम के लिये तो भगवान् स्वयं ही संसार बना हुआ है।

We should never criticize the world. World is, in fact, a training school. Whatever, we know here is possible only because of world. World is the ladder of our success, world is also the cause of our liberation. In fact, Lord Himself has assumed the form of the world for our well-being.

(188)

ईश ईदृशः संसारः संभूतो यत् तत्र ते परिमार्जनं भवेत्,
यदि तत्र त्वदीयरागरोगस्तर्हि स्वभावतस्तन्निवार्यते ।
विच्छेदधर्मेण रागं विनाश्य वारंवारं तच्चेतयति हि त्वाम्;
यत्त्वं त्वत्राथ साधनायै भद्र! कस्त्वं स्वस्वरूपं हि जिज्ञासस्व ॥

ईश ऐसा संसार बना हुआ है कि वहाँ तुम्हारा परिमार्जन हो सके। यदि वहाँ की किसी वस्तु में आपको राग रोग हो जाता है तो संसार के संसरणात्मक स्वभाव से वह निवृत्त कर दिया जाता है। विच्छेद धर्म के द्वारा राग को तोड़ कर, संसार बार बार तुम्हें याद दिलाता रहता है कि हे भला चाहने वाले! संसार में रमने के लिये तू यहाँ नहीं आया है अपितु तू तो यहाँ साधना हेतु आया है। तू क्या है? अपने स्वरूप को पहचानने, जानने हेतु तू यहाँ आया है। इसकी जिज्ञासा में लग।

Lord has assumed the form of the world in such a way so that you may be reoriented there. If you get attached therein with some thing, then that trouble is removed by the changing nature of the world. You are separated from the one you are attached and are repeatedly reminded that you are here for the mission of knowing your true nature.

(189)

स्वाध्यायेनाथ गुरुद्वारा ज्ञास्यसि,
यत्सच्चिदनन्तेशो हि स्वरूपं ते ।
ध्यायं ध्यायं तं तदेव भविष्यसि;
भृङ्गं स्मृत्वा कीटको यथा भृङ्गः ॥

स्वाध्याय अथवा गुरु द्वारा तुम्हें ज्ञात होगा कि तू सत्-चित्-
अनन्त-ईश-स्वरूप है । ऐसा ध्यान करते करते तू स्वयं ही वैसे हो
जायेगा जैसे मिट्टी के घर में बन्द कोई कीट, भृङ्ग का स्मरण ध्यान
डर पूर्वक करते-करते स्वयं ही भृङ्ग बन जाता है ।

By self study or through the initiation by the
preceptor, you would come to know that you are
essentially of the nature of Existence-Consciousness-
Infinity, the Lord. By meditating continuously on this
idea, you will yourself become Lord, as the insects shut
in the mudshells on continuously, hearing the brim-brim
sound of a special insect known as Bringa, become
bringas themselves.

(190)

स्वस्मिन्नीशसाक्षात्कारे तात!
सर्वत्र यावन्न पश्यसि तम् ।
रागद्वेषयोर्नोच्छेदस्तावत्;
समभावेन विना न मोक्षः ॥

अपने में ईश को साक्षात् करने के पश्चात् जब तक सबमें ईश को आप नहीं देखते तब तक राग-द्वेष समाप्त नहीं होता और समभाव के बिना मोक्ष कदापि संभव नहीं ।

After having realised God within you unless you see Him in all beings, there is no alleviation of malice. Deliverance is not possible without the attitude of equanimity.

(191)

मोक्षो न तनोःकर्षणं मोक्षो न हि शून्ये वासः,
मोक्षो नान्यत्र गमनं मोक्षो नैश्वर्यप्रदर्शः ।
मोक्षो ह्यज्ञानापहारो मोक्षः स्वरूपप्रकाशः ;
मोक्षः सर्वत्रेशभावो रागद्वेषयोश्च त्यागः ॥

मोक्ष शरीर को कष्ट देना नहीं है, मोक्ष शून्य समाधि में पड़े रहना भी नहीं है, मोक्ष किसी विशेष लोक में जाना भी नहीं है, मोक्ष करामातें दिखाना भी नहीं है। मोक्ष तो अज्ञान को दूर करना है और अपने स्वरूप को जानना है। मोक्ष में सर्वत्र ईश भाव को देखना है और राग-द्वेष का त्याग है।

Deliverance is not torturing your body, deliverance is not continuously remaining in tranquillity, deliverance is not going to some other worlds, deliverance is also not showing charismas. Deliverance is giving up of the ignorances, deliverance is the understanding of one's true nature, deliverance is seeing God everywhere, deliverance is the attitude of equanimity.

(192)

भारतग्रीसमिस्रादीनां देवतावादोऽथ महोद्घोषः,
दुर्भाग्यमुत्तराधिकारिणां यद् याथार्थ्येन नैष श्रुतः ।
उपनिषद्गीतादिषु सर्वत्रेशभावेन पुनरुक्तः ;
परं लोकोपकारी सर्वत्रेशवादोऽधुनाप्युपेक्षितः ॥

भारत, ग्रीस एवं मिश्र आदि देशों का देवतावाद महान् उद्घोष रहा है । दुर्भाग्य है कि उत्तराधिकारी उनके इस वाद को यथार्थ रूप से नहीं समझ पाए । उपनिषद् और गीता आदि में इस वाद को पुनः सर्वत्र-ईश-भाव के रूप में कहा गया, परन्तु विडम्बना है कि यह लोक उपकारी सर्वत्र-ईश-भाव अभी भी मानवता के द्वारा उपेक्षित ही है ।

The proclamation of Polytheism (many gods) is the special message of ancient India, Greece and Egypt etc. It is great misfortune of the successors that they could not understand the real import of this message. The Upanishads and the Bhagawadgita have reproduced it as pantheism (seeing God in all beings). But it is said that the highly useful principle for equanimity (seeing God in all) is neglected even now i.e., not being observed.

(193)

बृहदीशव्यवस्थाया अंशो हि त्वम्,
एवं नित्यं स्मार्यं चानुव्यवहार्यम् ।
नोचेदहंतस्त्वं छिन्नो भिन्नः खिन्नः ;
जगन्नाथोऽभेदायाथ स्मार्यो भद्र ॥

बहुत बड़ी सांसारिक व्यवस्था के तुम अंश हो, ऐसा तुम्हें नित्य स्मरण करना चाहिए और तदनुरूप आचरण भी करना चाहिए। नहीं तो अहंकार के कारण तुम छिन्न-भिन्न और खिन्न हो जाओगे। इस हेतु (अभेदभाव के लिए) तुम्हें जगत् के पिता ईश का नित्य स्मरण करना होगा।

You are part and parcel of the great system of universe, this you must remember and behave accordingly, otherwise, you being oppressed by ego will be isolated, divided and mentally worried. You must, therefore, see God everywhere for the development of the attitude of non-difference.

(194)

हेऽहंकारिन्! हे संसारिन्! हे प्रवृत्तिवादिन्,
कियतीमप्युन्नतिं त्वं प्राप्नुहि त्वं गच्छतात्।
यदि मूलत ईशतो हे तात! छिन्नो हि त्वम्;
तर्हि नभोगतच्छिन्नसूत्रपतङ्गवत्त्वम्॥

हे अहंकारी, हे संसारी, हे प्रवृत्तिवादी, तू कितनी भी उन्नति क्यों न प्राप्त कर ले, तू कितना भी ऊंचा क्यों न हो जाये, यदि मूल से, ईश्वर से तू कटा हुआ है तो सोच तेरी वही हालत है जैसे कि ऊँचे आसमान पर उड़ते हुए पतंग की डोर कट जाने पर उसकी हालत होती है।

Oh egoist, Oh worldly-absorbed, Oh worldly-inclined, even if you have achieved the highest success in the world, but if you are cut off from the faith of Lord, you are bound to be like the kite which flies high in the sky but when its cord is broken, it falls down.

(195)

सर्वं प्राप्यापि यदि नात्मानन्दः सर्वं तावन्निष्फलम् ।
यत्प्राप्याथ भवत्यात्मानन्दः तद्धि ध्येयं तद्धि प्राप्यम् ॥

सब कुछ प्राप्त करके भी यदि आपको आत्मानंद नहीं है तो सब कुछ निष्फल है । जिसको प्राप्त करके आपको आत्मानंद होता है वही ध्यान करने योग्य है और वही प्राप्त करने योग्य है ।

If on achieving all, one is not satisfied at heart, all achieved is thus useless. By the gain of that which gives inner solace of self, hence, should be thought upon, should be sought after, at all cost.

(196)

औपनिषद्यं हि ध्येयम्,
अस्तित्वं ते अतः सत् त्वम्।
चिन्तनं त्वय्यतः चित् त्वम्;
अन्तानत्येष्यनन्तस्त्वम्॥

उपनिषद् तत्त्व का स्मरण करना चाहिए। तेरा अस्तित्व है अतः तू सत् है, तू चिन्तन करता है अतः तू चित् है, तू एक अंत से दूसरे अंत की तरफ बढ़ते हुए उसे भी पार करता है, अतः तू अनन्त है।

You must meditate upon the essence of the Upanishads. You exist, hence you are existent. You think so you are consciousness. You cross over from one end to another and hence you are endless.

(197)

अहंता सत्तां सीमयति,
अहंता चिदं सीमयति ।
अहंतानन्तं सीमयति;
अहंतां निरस्य ब्रह्म त्वम् ॥

अहंभाव सत्ता को सीमित करता है, अहंभाव चित् को सीमित करता है, अहंभाव अनन्त को भी सीमित करता है। अतः अहंभाव को छोड़कर हम अनन्त अथवा ब्रह्म हो जाते हैं।

Egoism confines existence, egoism confines consciousness, egoism confines endlessness. Hence leaving egoism you become endless viz., Brahman.

(198)

चिन्तनेन हि चिच्चित्तम्,
अनुगमनेन जीवः ।
संयमनेन तदीशः ;
सर्वकारणत्वाद् ब्रह्म ॥

चिन्तन से चित्, चित्त (मन) हो जाता है, चिंतित किये हुए का अनुसरण करने से चित्, जीव कहलाता है, चिंतित किये हुए का संयम करने से चित्, ईश कहलाता है, सबका कारण होने से चित् ब्रह्म कहलाता है ।

By thinking, the consciousness becomes mind, by following the thought over, consciousness, is said to be soul (jiva), by controlling the thought over, consciousness, is said to be Lord, by projecting all the phenomena, consciousness, is called Brahman.

(199)

सच्चिदनन्तस्वरूपोऽहमेवं ध्येयम्,
अहंविस्मृत्याश्च स्वयमेवमुद्धार्यम् ।
ईशं सर्वत्र पश्यतानुव्यवहार्यम्;
ईशनिमित्तकर्मणात्मा संमार्ज्यः ॥

मैं सत्-चित्-अनन्त स्वरूप हूँ- ऐसा नित्य ध्यान करना चाहिए;
मैं-भाव रूप विस्मृति से अपने को उभारना चाहिये, ईश को सर्वत्र
देखते हुये व्यवहार करना चाहिये और ईश के निमित्त अपने सारे
कार्य करते हुये अपने आप का संमार्जन करना चाहिये ।

One should always meditate upon his true nature
of Existence-Consciousness-Infinity. By such
meditation, he should absolve himself from the forget-
fulness of ego-mindedness. He should behave, seeing
God everywhere, and also should, purify his personality
by performing all deeds for the sake of God.

(200)

इदमेव ह्यौपनिषद्यम्,
इदमेव चेशदर्शनम् ।
मननाचरणाभ्यां भद्र!
अभयानन्दप्रदमिदम् ॥

यही उपनिषद् का सार है, यही ईशदर्शन है। इस दर्शन में कहे हुए ज्ञान और अभिप्राय का मनन और आचरण करने से, हे प्यारे, निश्चित रूप से अभय और आनन्द की प्राप्ति होगी।

This is the essence, and this is the Isha-darshan. The meditation and observance of the teaching of this work will bestow on you the fearlessness and bliss.

अथेशदर्शनसारः
ईश दर्शन का सार
Essence of the Ishadarshan

201 (1)

वेदाः शास्त्राणि तेपोयोगयज्ञानुष्ठानानि,
आश्रमेषु वासः तथा तीर्थानामटनानि!
लोकाः परलोका अथ जन्मजन्मान्तराणि;
देवाः पितरः खगा नृपाः तेषाञ्चैश्वर्याणि ।।

वेद, शास्त्र, तप, योग, यज्ञ और अनुष्ठान; आश्रमों में वास तथा तीर्थों का अटन (भ्रमण); लोक, परलोक और जन्म जन्मान्तर; देव, पितर, ग्रह, नक्षत्र, राजा लोग और उनके ऐश्वर्य-

Vedas, systems of philosophies, yoga, sacrifices and their performances; dwelling in various stages of life and places, and going round various places of nature and religion; the visible worlds and the worlds other than them; and various births therein; gods, manes, heavenly bodies (planets etc.), the kings and their respective extra-ordinary powers and attributes-

202 (2)

गोसुवर्णकन्यादानमथाभयदानानि,
लोकहितैषणा तदनुरूपाणि कार्याणि!
आनन्दा अखिला गुरोः कृपा तत्त्वज्ञानानि;
धातैतेषामन्तस्ते तातप्यया दर्शनानि ॥

गो-सुवर्ण-कन्या दान तथा अभयदान; लोक हितैषणा और तदनुरूप कार्य; अखिल आनन्द, गुरु की कृपा, और तत्त्वज्ञान, इन सबका धाता तेरे अन्दर ही है, तड़प से ही उसके दर्शन हो सकते हैं ।

The giving of alms of cows, gold and young women and above all the giving of shelter to victimised one; the schemes of welfare and their implementations; all types of pleasures; grace of preceptor, knowledge of truth, the projector of all these, is enshrined in the cavity of your heart. Only through intense longing, He can be perceived.

203 (3)

यथा प्रेम्णा दष्टः प्रेयसीं सर्वत्र पश्यति,
तया विना न शान्तिः तस्य न जागर्तौ न स्वप्ने ।
एवं श्रद्धधानो यदेशं सर्वत्र दिदृक्षते;
तेन विना न तस्य शान्तिर्बहिरन्तस्तस्येशः ॥

जैसा प्रेम से डंसा हुआ कोई, सर्वत्र प्रेयसी को ही देखता है ।
उसके बिना उसे न जागते हुए और न ही सोते हुए शान्ति मिलती है ।
ऐसे ही जब ईश में श्रद्धावान्, सर्वत्र ईश को ही देखना चाहता है,
उसके बिना उसे शान्ति नहीं मिलती, उसके बाहर अन्दर सर्वत्र ईश
ही ईश उसे व्याप्त दिखाई देता है ।

As one stung by love, looks everywhere his beloved. Without her, neither he has peaceful sleep, nor he is peaceful while awake. Likewise, when, one, having faith in God, wants to see Him everywhere, without Him he is neither happy within nor without. He yearns for Him everywhere.

204 (4)

तत्त्वमसीति चिन्तयन् यदा त्वं तस्मिँल्लीयसे ।
“सर्वं खल्विदं ब्रह्म” एष भावो भद्र! मोक्षः ॥

वह तत्त्व ही तुम हो, जब तुम उसमें एकीभाव से लीन हो जाओगे, तब यह सारा संसार उस परम तत्त्व का, ब्रह्म का रूप दिखाई देने लगता है। यही भाव मोक्ष है।

You are that (God)- when continuously meditating on this, you get lost therein, hereafter, everything starts appearing as God. This is liberation.

205 (5)

मनसि यावदहंकारः,
संसारस्तावदनिवार्यः ।
श्रद्धधानस्यानहंभावः ;
सर्वत्र तस्य हीशभावः ॥

मन में जब तक अहंभाव है तब तक संसार अनिवार्य रूप से चलता रहता है । श्रद्धावान् अहंभाव रहित हो जाता है और उसे सर्वत्र ईश ही ईश नज़र आता है ।

As long as there is ego in the mind, there is, surely the appearance of the world. One who is deep in faith, egoism leaves him. Hereafter, he looks God everywhere.

206 (6)

जगतः सर्वकार्याणि प्रभोः स्मृतिहराणि ।
प्रियस्य मत्वा कार्याणि प्रोन्नतभावेनोद्धह ॥

ये जितने दुनिया के काम धन्धे, तुझे तो उसको भुला ही देंगे ।
प्रभु के काम, परमेश्वर के धन्धे! प्रोन्नति हो गई है, काम सम्भाल
बन्दे ।

All the errands of the world, eschew our memory of
Lord; all our schedules, if taken as assigned by Lord;
Upgrade us, as well quality of that we do.

207 (7)

अत्रागमने दीर्घा प्रक्रिया ।
कृपया स्वल्पा श्रद्धैव सिद्धिः ॥

यहां तक पहुंचने में दीर्घ साधना प्रक्रिया है । ईश कृपा से वह छोटी भी हो सकती है । श्रद्धा ही सिद्धि है ।

To reach here, an intense process of prayer is needed. It can be shorter by the grace of God. The very faith is the accomplishment.

208 (8)

सर्वकारकः पुरातनः पुरुषो हि सर्वान्तःस्थः ।
भूतं भविष्यद् वर्तमानं निष्ठयाखिलं ज्ञायते ॥

सब का कारक पुरातन पुरुष सबके अन्दर स्थित है। भूत, भविष्यत् और वर्तमान, प्रभु में निष्ठा रखने से, सब कुछ ज्ञात हो जाता है।

The Ultimate Cause of all, the Eternal One, is enshrined everywhere as the indwelling soul. By unshaken faith and firm conviction, one can achieve all of past, present and future.

209 (9)

तर्कपुष्टा श्रद्धा श्रेष्ठा,
मननयुक्ता पूजा श्रेष्ठा ।
सर्वसम्मेलको धर्मः श्रेयान्;
संशयनिवारकं वाक्यं श्रेयः ॥

तर्कपुष्ट श्रद्धा श्रेष्ठ है; मननयुक्त पूजा श्रेष्ठ है; सबसे मेल करने वाला धर्म श्रेष्ठ है और संशय निवारण करने वाला वाक्य श्रेष्ठ है ।

Faith ripened through logic is better; prayer supported by constant reflection is better, the religion which brings all factions together, is better, and the speech which cuts asunder the doubts, is better.

210 (10)

पूजां कृत्वा पर्यालोच्यम्,
पूजायाः क उ प्रभावः ।
यदि पूर्ववद् भद्र! त्वम्;
तर्हि पूजाधुनाऽफला ॥

पूजा करने के बाद पर्यालोचन करना चाहिये कि पूजा का कितना प्रभाव जीवन में उतर पाया है । यदि अभी आप पहले जैसे ही हैं तो समझिए कि अभी पूजा आप के जीवन को प्रभावित करने में फलीभूत नहीं हो रही है ।

After prayer you must introspect, how the prayer is effective in your life. If you are unchanged still, it means the prayer has not yet shown its effect.

211 (11)

अहं त्वं सर्वमीशरूपम्,
समभावस्य चाचरणम् ।
यदैवं पूजा सुफलति;
मुक्तिरित्यथेशकृपातः ॥

मैं तू और सब ईश के रूप हैं, जब पूजा इस रूप में फलित हो जाये और समभाव का आचरण सिद्ध (पक्का) हो जाये, तब इसे ईश की कृपा से प्राप्त, मुक्ति ही समझिए।

All, you and me are the forms of Lord, when such attitude matures up and there is the perfect behaviour of equanimity in life, think the miraculous blessing of freedom in life has been showered on you by God.

212 (12)

ज्ञाता अर्था ज्ञानिनो जीवने,
प्राणा इवाथ सहजा यदा ।
शतशःयदा तेषां प्रयोगः;
ज्ञानं तदानुभवो भवति ॥

ज्ञान जब ज्ञानी के जीवन में प्राणों के समान सहज भाव प्राप्त कर लेता है और उसका जब शतशः प्रयोग जीवन में होने लगता है तब उसे अनुभव कहते हैं ।

When the knowledge becoming spontaneous like the vital breath in the routine-life of knower, and when it is utilized cent percent in life, it ascends to the status of realization.

213 (13)

अनुभवेन विना तथा ज्ञानम्,
प्रयोगेण विना यथा ह्यौषधिः ।
तृषार्त्तस्य पार्श्वस्थाः खलु तोयाः;
किं पानेन विना तस्य तृषाहनः ॥

अनुभव के बिना ज्ञान वैसे ही है जैसे प्रयोग के बिना औषधि होती है। क्या प्यासे के पास रखा हुआ जल, क्या पिये बिना उसकी प्यास बुझा सकता है।

The knowledge without realization is like the medicine without application. Shall the water placed nearby the thirsty one, can, quench the thirst without it being taken.

214 (14)

नाम जपस्य सततं पानं शास्त्राणां मननेन सेवनम् ।
लोकतृषाचित्तचाञ्चल्यहरे ईशसाक्षात्कारकारके ॥

नाम जाप का सतत पान, शास्त्रों का मननपूर्वक पाठ ।
लोकतृषा चित्तचञ्चलता हरे, करायें ईश साक्षात्कार ॥

The constant meditation of Lord's name and the reflective study of the scriptures, undo the longing for the world and help the aspirant in the revelation of Lord.

215 (15)

संसारे चित्तसंधानेऽथ द्वन्द्वक्लेशाप्तिः,
मनने तस्य सन्धाने गुह्यार्थोपलब्धिः ।
सर्वत्रेशभावे तत्संधाने आनन्दाप्तिः ;
निर्विकल्पे स्वरूपता व्यवहारनिवृत्तिः ॥

संसार में चित्त संधान करने पर द्वन्द्व व क्लेश की प्राप्ति होती है । मनन चिन्तन में उसके संधान करने पर गूढ़ अर्थ की प्राप्ति होती है । सब में ईश है, इस भाव में उसके संधान करने पर आनन्द की प्राप्ति होती है । निर्विकल्प में उसके लीन होने पर स्वरूप प्राप्ति अथवा व्यवहार निवृत्ति होती है ।

By concentration of mind in the world, one is afflicted by dichotomy and misery; by making the mind busy in meditative thinking, one gets the deeper meaning of the facts (truth): by devoting the mind to see God in all beings and things, one gets immense pleasure, and by pushing the mind into tranquillity, one is restored to the Essence, the negation of multiple behaviour in totality.

216 (16)

संसारपरमार्थयोः संधिर्हि यः,
स श्रेयान् साधक! श्रेयानतिश्रेयान् ।
निर्विकल्पशून्यं नेशाय रोचते;
संसाररूपोऽतः प्रभुर्बोभवीति ॥

संसार और परमार्थ की जो सन्धि है, हे साधक! वही श्रेयस्कर है, वही श्रेयस्कर है। निर्विकल्प शून्यता ईश्वर को अच्छी नहीं लगती। इसीलिए वह निरंतर संसार रूप धारण किये रहता है।

Oh seeker-after-truth! the search of the synthesis of the world and its Essence (God) is preferable, nay, utmost preferable. God is not interested in the null and void-like tranquillity and hence, He ever manifests Himself as worlds.

217 (17)

संसारपरमार्थयोः संधिर्हि यः,
अतिगूढः साधक! महातिगूढः ।
यमेवेशो वृणुते तेनैव लभ्यः;
तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम् ॥

संसार और परमार्थ की जो सन्धि है, हे साधक! वह गूढ और महाति गूढ है। जिसको ईश चुनता है उसे ही वह प्राप्त होता है। उसी के लिए परमात्मा अपने विशिष्ट तनु को विवृत्त करता है।

The subject matter of relation (identification) between world and God is quite mysterious, O' seeker! much much mysterious. Whom Lord chooses, to him, He unfolds. To him, He fully, lays bare his embodiment.

218 (18)

चित्रकारेणाथ कृतं गुप्तचित्रम्,
यथा ध्यानप्रक्रियया हि दृश्यते ।
एवं सर्वाणिरूपाणीशरूपाणि;
श्रद्धयाभ्यस्यन्सर्वत्रेशं पश्यति ॥

चित्रकार के द्वारा बनाया गया गुप्त चित्र जैसे लगातार ध्यान प्रक्रिया से देखा जा सकता है । वैसे ही, सारे रूप ईश्वर के ही रूप हैं । ऐसे, श्रद्धा से अभ्यास करते रहने से, सब में, सर्वत्र, ईश दिखाई देने लग जाता है ।

As the concealed picture (behind the front picture) sketch-managed by an artist can be seen by the continuous concentrated observation, likewise, by practising with intense faith that all forms are God's forms, one can directly see God everywhere.

219 (19)

अत्र पिता अपिता भवति माता अमाता,
लोका अलोका देवा अदेवा वेदा अवेदा,
(अथ) अनन्वागतः पुण्येनानन्वागतः पापेन,*
तीर्णो हि तदा सर्वान् लोकान् हृदयस्य भवति ।।

बृ0उप04.22.

(ऐसा अनुभव हो जाने पर)– पिता अपिता हो जाता है, माता अमाता हो जाती है, लोक अलोक हो जाते हैं, देव अदेव हो जाते हैं, वेद अवेद हो जाते हैं। (इसके अनन्तर) वह हृदयगत सभी प्रकार के पुण्य और पापमय लोकों से परे चला जाता है, अर्थात् पाप उसे नहीं छूते।

There (in that state) a father is not a father, a mother is not a mother, the worlds are not the worlds, the gods are not the gods, the Vedas are not the Vedas. He is not followed (affected) by good, he is not followed by evil for then he has passed by (planes of) all the sorrows of the heart.* *

* विभक्ति परिवर्तन संदर्भ के अनुसार।

**Translation by S.Radhakrishnan.

220 (20)

सर्वं ब्रह्मैव ब्रह्म सर्वत्रेश एवेशः ।
व्यष्टिरथेशे हि विलयमनुभवति ॥

यहां पर (ऐसी अवस्था में) सब ब्रह्ममय हो जाता है। सर्वत्र ईश ही ईश दिखाई देता है। व्यष्टि भाव (व्यक्ति भाव) ईश में ही विलीन अनुभव होने लगता है।

In this state all becomes Brahman. Everywhere, Lord and only Lord is visible. Individuality seems to have been merged in the Lord.

221 (21)

संसारो यदेशरूपोऽनुरूपोऽथ च व्यवहारः ।
इत्याप्तौ ज्ञातव्यं ज्ञातं भजनीयमवेहि चाप्तम् ॥

संसार जब ईश रूप दिखे, वैसा ही होये व्यवहार, तब जानिए-
जानने योग जान लिया, भजन का फल पा लिया ।

When world starts appearing as the form of Lord
and the behaviour also changes accordingly, then be
sure, the knowable is known and the meditated upon
has been bestowed upon.

222 (22)

जगद् यदास्य निश्चितमीशरूपम् ।
विश्वासो यदास्य न कम्पते स्वल्पः,
ईशप्रसादत एव तात! मोक्षः;
अथाहं निमित्तमीशोऽस्य योजकः ॥

जगत् जब साधक को, ईश रूप दिखाई देने लगे, और उसका जब यह विश्वास लेश मात्र भी कंपित न हो तब हे साधक! इसे ईश प्रसाद से मोक्ष ही जानिए। इसके बाद अहम् निमित्त भाव को प्राप्त हो जाता है और ईश उसका संयोजक हो जाता है।

When, the world starts appearing as the form of God and when his this very thought/faith does not waiver slightly, this should be taken as liberation by blessing of God. Hereafter ego becomes instrument and Lord becomes its employer.

223 (23)

ईशयन्त्रकोऽथाहंकारः ।
मनस्स्फुरणेशप्रेरणा,
ईशेशितेन्द्रियाणां चेष्टाः ;
वातेरितपत्राणि यथा ॥

ऐसा अनुभव होने पर अहंकार ईश का यन्त्र मात्र हो जाता है मन में स्फूर्णा ईश की प्रेरणा समझी जाती है । इंद्रियों की चेष्टाएं ईश से ईशित मानी जाती हैं जैसे कि पत्तों की कंपन वायु से मानी जाती है ।

On realization, ego is understood to be just an instrument of God. The volitions in mind are taken to be just caused by God. The respective functions of senses are taken to be controlled by God as the movement of the leaves is caused by wind.

224 (24)

नाहं तावन्न च त्वं तावद् ।
नेदं तावत्तद्धि तत्तावद्,
ईश एव लीलां हि कुर्वन्
स्वयं सर्वत्र विश्वरूपः ॥
स्वयं सर्वत्र विश्वरूपः ॥

तब (अनुभव होने पर) न मैं रहता है, न तू रहता है, न यह रहता है, केवल वह ही वह रहता है। ईश्वर ही लीलायमान नजर आता है। वह स्वयं सर्वत्र विश्वरूप होता है।

(On realization) there is neither I nor you nor this world. Only He and He is everywhere. God Himself appears busy in the play (of worlds) everywhere. He Himself appears as multiple forms of the world.

225 (25)

सर्वत्रेशभावो न सिध्यति यावत्तावत्,
तर्कयुक्तिभ्यां संसारयात्रा साधनीया।
परमार्थे गतिर्हि प्रिय! अथ श्रद्धायाः;
सर्वत्रेशभावे च सिद्धे, साफल्यं द्वयोः ॥

जब तक सर्वत्रेशभाव (समभाव) सिद्ध न हो जाये तब तक तर्क और युक्ति से संसार यात्रा चलाते रहना चाहिए। हे प्रिय! परमार्थ में तो गति, श्रद्धा की ही है। सर्वत्रेशभाव के सिद्ध हो जाने पर संसार और परमार्थ दोनों में सफलता ही सफलता है।

Till, the attitude of equanimity viz., seeing God in all things, matures, one should adhere to the appropriate situational measures and logic in day to day life. But the endeavour into the spiritual world can be accomplished only through the sole means of shraddha, the faith. When the faith: that, 'God's will prevails upon all the aspects and phases of life', ripens viz., the attitude of equanimity matures, hereafter, he sails smoothly in both this world and spiritual kingdom.

226 (26)

अहंभावो नेष्टः,
समभावः श्रेष्ठः ।
अहंभावो बन्धः;
ईशभावो मोक्षः ॥

अहंभाव नेष्ट है, समभाव श्रेष्ठ है। अहंभाव बन्धन है, ईशभाव मोक्ष है।

The attitude of ego is undesirable, the attitude of God's presence in all, is the best. The attitude of ego is bondage and the attitude of looking God everywhere in all things, thoughts and feelings, is freedom viz., emancipation.

‘ईशदर्शनम्’ का सरल सार

*

ईश अजस्र सृष्टि का खेल खेल रहा है

इधर से उधर कोई जा रहा है,
उधर से इधर कोई आ रहा है।
चलना है जिंदगी, रुकना है मौत,
ईश अजस्र सृष्टि का खेल खेल रहा है।।

ईश सत् है-भूत भवद् भविष्यत् त्रिकालातीत है,
ईश चित् है-चिन्तन मनन सृजन संकल्पशील है।
ईश अनन्त है-आदि-अन्त, भाव-अभाव अतीत है,
ईश पूर्ण है-परम तत्त्व, प्रेरक ज्ञान, प्राप्य लक्ष्य है।।

ईश पूर्ण, यदि कुछ न करे, तो प्रलय, शून्य बनता है,
ईश पूर्ण, यदि कुछ करे, तो नश्वर संसार बनता है।
न करने से, करना भला, खाली बैठना, बेकार है,
अतः पूर्ण, मैं-शासी ईश बनता है, सृष्टि करता है।।

ईश, व्यक्ति नहीं, अनन्त है, विश्वरूप है, सर्वत्र अनन्तता भरता है,
प्राकृतिक प्रपंच, बहुविधजीव, अवतार, सिद्ध, जो चाहे बनता है।
मैं अभिभूत अपने अंशों को अन्तः प्रेरणा से विकसित करता है,
सांसारिक घटनाक्रम से सिखाता है, अनन्त की ओर मोड़ता है।।

ईशदर्शनम्

हर कोई इस संसार में कुछ न कुछ खोज रहा है,
कोई भोजन, कोई साधन, कोई धन, पद खोज रहा है।
कोई ज्ञान, कोई शक्ति, कोई यश, आनन्द खोज रहा है,
हर खोज को ईश अपूर्ण बना, पूर्णता की ओर मोड़ रहा है।।

मैं छोटी, खोज छोटी, मैं बड़ी खोज बड़ी,
मैं की हर प्राप्ति, छोटी बड़ी सब अपूर्ण है।
चार दिन की खुशी, फिर अंधेरी रात है,
अनन्तता पाये बिन, मैं की हर प्राप्ति अपूर्ण है।।

परमार्थ ज्ञान, युगों युगों से प्रचार कर रहा है,
मैं-भाव, वैषम्य, जन्ममरण के बीज बो रहा है।
मैं, मैं-भाव छोड़े बिन, शास्त्रालाप से क्या बनता है,
अनन्त का अनुगामी बने बिन, प्रभुकृपा कौन पा सकता है।।

प्रभु का भक्त जब कोई बनता है, बताने वाला मिलता है,
मैं-भाव ढीला होता है, मैं, अनन्त का निमित्त बनता है।
सर्वत्र, अनन्त-ईश दिखता है, भेदभाव अनन्त में मिटता है,
अनन्त से अभेद होता है, तब पूर्ण के अनुसार चलता है।।

पूर्ण, कुछ न करे, तो निष्क्रियता में अपूर्ण है,
पूर्ण, कुछ करे, तो संसारी नश्वरता से अपूर्ण है।
पूर्ण, न यहाँ अटके, न वहाँ अटके, करता चले,
गति, स्थिति, फिर गति, में ही पूर्ण, पूर्ण है।।

अनन्त, सृजन को छोड़ता नहीं,
अनन्त, सृष्टि में अटकता नहीं।
देव का अद्भुत काव्य देखें,
जो न मरता है, न बूढ़ा होता।।

मैं मेरी का अपने में मेल करो

*

प्रभु जी, मैं मेरी का अपने में मेल करो,
जो सोचूं, जो करूं, प्रभु जी, ताहि आप धरो।
जो देखूं जाहि मिलूं, तहाँ प्रभु आप दिखो,
यहां प्रभु आप दिखो, वहाँ प्रभु आप दिखो।।

जहाँ रागूं जहां द्वेखूं, वहाँ देख तुझे शर्माऊं, लज्जाऊं,
प्रभु यहाँ भी तुझे देखूं, प्रभु वहाँ भी तुझे देखूं।
जो खाऊं जो पान करूं, प्रभुजी, रस खान आप बनो,
प्रभुजी, धाता परिधान आप बनो, जगपालक आप बनो।।

जो सोचूं जो समझूं, हर सोच समझ में, हे प्रभु, तूझे समझूं,
हर सोच में, हे प्रभु, तुझे सोचूं, हर समझ में तुझे समझूं।।
संसारी सब काम-काज को जगरसिया की रास समझ, खो जाऊं,
जगरसिया की रास में रम जाऊं, उसमें मिल जाऊं, उसमें खो जाऊं।।

मैं के लोकों में भटक-भटक कर देख लिया है,
स्व-स्वरूप को भुला कर उसका फल पा लिया है।
प्रार्थना है, अब आपसे, हे प्रभु, मैं मेरी को हर लो,
मैं के घेरे को हटा कर अनन्तता के पथ पर धर दो।।

मैं मुक्त ईश युक्त

इच्छा नहीं, संसार नहीं,
परम में सब विलीन।
लय समाधि इसे कहें;
अवस्था व्यवहार हीन ॥1॥

संसार है, व्यवहार है,
बन्ध और मोक्ष विचार।
संसार रहते ही चले;
श्रवण मनन आचार ॥2॥

वेद कहें, ईशरूप सब,
मान चले, सुख पाये।
लय समाधि श्मशान सम;
अतः ईश बने संसार ॥3॥

ईशरूप सब से मेल रखे,
जीवन सुख से यूँ कटे।
न माने, संसार-भँवर फँसे,
खुद डूबे और डुबाये ॥4॥

एक चेतन, एक तत्,
ईश बना बहु रूप।
भाव ऐसे में रमा,
निमित्त भाव से मुक्त ॥
मैं मुक्त, ईश युक्त ॥5॥

*

धन-शक्ति-काम-अन्ध को,
परलोक परमार्थ नहीं दिखता।
जो कुछ सब यहीं, वह कहता,
खाली हाथ, निराशा में मरता॥

करता चले, कहीं न अटके।
संसार परमार्थ तिस एक दिखे॥



Author's Profile

Ishadarshanam, the author's work in your hands, comprises 226 stanzas in Sanskrit with Hindi and English translation with an appendage of three poems in Hindi giving the central idea of the whole work, total pages (xx+230=250).

The work, presents a perennial query of man about the nature and cause of the amazingly miraculous universe having innumerable phenomena and multiple orders and

schemes of things, where nothing is permanent. The author presents the views of the Vedic seers who penetrating through the layers of the universe, got at the throbbing Consciousness which is ever busy in manifestations of universe but still unstuck anywhere. The seers presenting the model of the Ultimate Cause, guide the aspirant, to be busy in the world but should not get stuck anywhere. This attitude would identify him with the Ultimate Cause or so to say, the God which is not an individual but is an All Pervasive Essence of man and the universe. Following the way of Essence, in day to day affairs, ensures a happy, healthy, peaceful and wholesome life. This is the message of Ishadarshanam.

Vedic seers and modern scientists, both converge now on the point as both agree that synchronization with LIGHT sets the synchronizer beyond time-space-conditioning.

The author has five more books to his credit: 1. The Concept of Atman in the Principal Upanishads (Awarded) 2. Pageants of Indian Culture 3. Bhagawadgita (Jivan Dharshan) 4. Mein Kaun 5. Sukh Ki Khoj. Anubhav, his another book is ready for publication. He is presently, working on the project: Rigveda ka Bharat: Tatkalik Tasvir.

The author, Dr. Baldev Raj Sharma retired from the Department of Sanskrit, Delhi University, Delhi, as the Professor of Indian Philosophy in April, 2001. He taught, the Upanishads and Advaita-Vedanta to Post-graduate classes and also guided research works in the area for about thirty five years.

About 80 students completed their M.Phil and Ph.D. works on various topics, under his guidance. Even now a number of research scholars are getting guidance from him.